रवीन्द्र साहित्य और समीक्षा

लेखक
प्रो० अवध प्रसाद वाजपेयी

१९५८
साहित्य प्रकाशन दिल्ली

प्रकाशक
हिन्दी साहित्य मन्दिर

मूल्य
तीन रुपया

मुद्रक
दीपक प्रेस, वाराणसी।

समर्पण !

महाकवि एवं महामानव

'निराला'

को

सादर सप्रेम समर्पित जिनकी कृतियों

से लेखक ने एकलव्य की भाँति

प्रेरणा प्राप्त की ।



कविवर, तुम्हारी प्रेरणा पा प्राण गद् गद् हो गए ।
गलदश्रु ही स्वर-साधना में स्नेह संबल हो गए ॥
मधुपर्क नित फल-फूल से, पूजा करूँ कवि-प्राण की ।
नवद्वीप-वृन्दावन-'निराले' काव्य के भगवान की ॥

विषय-सूची

—:—

दो शब्द

(डा० भगीरथ मिश्र)

(रीडर लखनऊ विश्वविद्यालय)

भारतीय साहित्य के विभिन्न युगों में अनेक उत्कृष्ट कवि और महाकवि हुए हैं। अपनी विशेषताओं में प्रत्येक अपना निजी महत्व रखता है। परन्तु प्राचीन, मध्य एवं आधुनिक युगों के सर्व श्रेष्ठ कवि के संबन्ध में यदि कोई मुझसे पूछे, तो मैं यही कहूँगा कि प्राचीन काल के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि कालिदास हैं; मध्य युग के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि तुलसीदास हैं और आधुनिक युग के सर्वश्रेष्ठ भारतीय कवि रवीन्द्र नाथ हैं। हमारे युग ने उन्हें कवीन्द्र, कवि-सम्राट्, महाकवि विश्वकवि आदि उपाधियों से विभूषित किया है। उनका सम्मान केवल बंगाल प्रदेश में या केवल उत्तरी भारत में ही नहीं होता, वरन् समग्र भारतदेश और विश्व के समस्त शिक्षित देश हमारे इस महाकवि को सम्मानित करते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र पर केवल बंगभाषा-भाषियों को ही नहीं; वरन् समस्त भारतीयों को गर्व है और समस्त संसार 'नोवेल पुरस्कार' प्रदान कर हमारे कवि को सम्मानित कर चुका है।

इसका कारण क्या है? इसका कारण यही है कि कवीन्द्र रवीन्द्र ने जो कुछ लिखा है, वह देश-काल की सीमा में बँधकर नहीं। जन-जन की भावनाओं और कल्पनाओं को उन्होंने

अपने साहित्य में साकार किया है। मानव-मात्र के हृदय को स्पर्श करने वाले सौन्दर्य और करुणा से आप्लावित रूपों और चित्रों को उन्होंने अंकित किया है। उन्होंने हमारी सुप्त भावनाओं को ध्वनित और हमारी अनुभूतियों को झंकृत किया है। वे हमारे अमर गायक हैं। उन्होंने आधुनिक संगीत को एक नई स्वर-लहरी प्रदान की है।

कवीन्द्र रवीन्द्र केवल गायक और कवि ही नहीं हैं, वे नाटककार और कथाकार हैं। इस रूप में उन्होंने न केवल प्राचीन और पौराणिक मनोरम झाँकियाँ ही दिखाई हैं, वरन् मानव मन की विविध तरंगों, संघर्षों, अन्तर्द्वन्दों, परिस्थितगत विवशताओं तथा चारित्र्य और उदात्त आदर्शों का भी विशद चित्रण किया है। रवीन्द्र जितने संवेदनशील हैं उतने ही रोमैण्टिक। अत उनके चित्रणों मे एक विलक्षण स्वप्निल स्वर्णिमता दिखलाई देती है। कहा जा सकता है कि उनका चित्रण अनुभूत यथार्थ का नहीं, वरन् कल्पनागत यथार्थ का है। यह उनकी प्रतिभा और शैली को विशेषता के रूप मे अवतरित हुआ है।

विश्व कवि टैगोर का हृदय मानवता की भावना से इतनी गहराई से ओत प्रोत था कि वह आध्यात्मिकता के स्वर मे मुखरित हो उठा था। चरम सत्ता का अनुभव उन्होंने मानव-हृदय के प्रसार एवं संवेदना की व्यापकता में किया है। परन्तु यहाँ हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि रवीन्द्र के जिस भाव ने, विश्व के सहृदयों का मन मुग्ध किया है, वह परंपरागत भारतीय आध्यात्मिकता के संस्कार से प्रसूत हुआ है। अतः टैगोर का स्थान भारत के सांस्कृतिक कवियों मे है। उन्होंने भारतीय संस्कृति की उन विशेषताओं को प्रत्यक्ष करना चाहा है जो विश्व में मानवता के विकास के लिए आवश्यक और अनिवार्य हैं।

शान्तिनिकेतन के रूप में एक सांस्कृतिक पीठ की स्थापना करके कवीन्द्र ने विश्व संस्कृति के आन्दोलन का सूत्रपात किया। आजका राजनीति-प्रधान एवं संकीर्ण जातीयता के रोग से ग्रस्त संसार यदि इस प्रकार की सांस्कृतिक प्रगति का मूल्य समझ सकता, तो संसार को विनाश की ओर अग्रसर करने वाले प्रयोग कब के वन्द हो गये होते! आज विश्व को टैगोर और गांधी के भावों की आवश्यकता है। अतः रवीन्द्र साहित्य का जितना भी प्रचार हो उतना ही अधिक अच्छा है।

मुझे वड़ी प्रसन्नता है कि मेरे प्रिय शिष्य श्री अवध प्रसाद वाजपेयी ने 'रवीन्द्र साहित्य' पर अपना प्रस्तुत अध्ययन प्रकाशित किया है। इस अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता इसकी रोचक शैली और तुलनात्मक दृष्टिकोण में देखी जा सकती है। लेखक के सामने भारतीय साहित्य की परंपरा ही नहीं विश्व-साहित्य की भी प्रमुख धारायें हैं जिनमें तरंगित रवीन्द्र की भावावली देखकर वह मुग्ध हुआ है। ऐसी कृतियों की आज कल वड़ी आवश्यकता है और मेरा विश्वास है कि इस पुस्तक का समुचित स्वागत होगा।

———

प्रस्तावना

निबन्ध-रचना का कार्य विशेष कठिन है। आचार्य शुक्ल का कथन है कि "यदि गद्य कवियों या लेखकों की कसौटी है तो निबन्ध गद्य की कसौटी है।" वास्तव में निबन्ध का सच्चा स्वरूप लेखक की वैयक्तिक भावनाओं की अभिव्यक्ति मे दृष्टिगत होता है। व्यक्तिगत भावनाओं को व्यञ्जित करने के लिये "भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास" अनिवार्य है। निबन्ध बहुत कुछ आत्मा की अभिव्यक्ति होती है और इस अभिव्यञ्जना के लिये अवश्य ही सशक्त भाषा चाहिये, अन्यथा लेखक अपनी भावुकता की अनुभूति पाठक तक यथा रूप पहुँचा नहीं सकेगा। इस प्रकार निबन्ध की प्रमुख विशेषता उसकी "आत्मीयता" मे है। एक पाश्चात्य विद्वान् ने एक आदर्श निबन्ध में "Lightness and ease and a confidential relation between the author and the reader" के गुण स्वीकार किये हैं।

निबन्ध एक अनति विस्तृत रचना है अतः इसमे सङ्क्षिप्त गुण की भी विशेषता उपलब्ध होती है। वास्तव मे Saint Benve नामक पाश्चात्य विद्वान का कथन बहुत सत्य है कि निबन्ध "One of the most difficult, as well as dilightful, forms of literary expression" है।

वाजपेयी जी रचित प्रस्तुत निबन्धावली में निबन्ध के गुण बहुत स्पष्टरूप मे विद्यमान हैं, यद्यपि आलोचना प्रधान होने के

कारण इनमें विचार प्रधानता बहुत कुछ उपलब्ध होती है, तथापि भावुकता और वैयक्तिक अभिव्यञ्जना का पल्ला आरम्भ से अन्त तक भारी रहता है। प्राकृतिक दृश्यों में अपने को तन्मय करते हुये, नाटकीय शैली मे, निबन्धकार अपने व्यापक भावोदधि में डूबता उतराता दृष्टिगोचर होता है। इसीको किसी अँग्रेज विद्वान् ने "Loose sally of the mind" कहा है, जो निबन्ध का एक प्रमुख लक्षण है।

लेखक की दृष्टि इन निबन्धों में बहुत व्यापक तथा उदार दृष्टिगत होती है। रवि बाबू के काव्य का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उसने आदि कवि वाल्मीकि, महा कवि कालिदास, जयदेव, विद्यापति, चंडीदास, कबीर, देव तथा पाश्चात्य रोमांटिक कवि वर्ड्स वर्थ, शेली, कीट्स आदि से उनका भाव-साम्य अङ्कित किया है। हिन्दी के शृङ्गार युगीन कवियों से महा कवि देव का चयन, लेखक की सूक्ष्मकला पारखी दृष्टि का परिचय देता है। वास्तव में देव के काव्य में शृङ्गार, भक्ति, दार्शनिकता तथा कला का जैसा सुन्दर समन्वय प्राप्त होता है वैसा हिन्दी के बहुत कम कवियों में दृष्टिगत होता है। अस्तु, इस व्यापक तुलनात्मक अध्ययन के द्वारा लेखक ने विश्व-साहित्य में रवि बाबू का स्थान निर्धारित करने की चेष्टा की है। लेखक की अध्ययन शीलता तथा मार्मिक दृष्टि का यह तथ्य परिचायक है।

शृङ्गार वृत्ति की व्याख्या करता हुआ लेखक राधा और उर्वशी के चरित्र विश्लेषण द्वारा, व्यास से लेकर रवि बाबू तक तथा अन्य महा कवियों की दार्शनिक तथा कलात्मक वृत्ति की ओर संकेत करता है। वासना को वह आध्यात्मिकता का आधार मानता है—सम्पूर्ण प्रकृति में उसकी स्थिति की कल्पना करके, प्रकृति पुरुष के तादात्म्य की अनुभूति में तन्मय होकर वह वासना को सृष्टि की मूल प्रेरणा तक सौन्दर्यानुभूति का प्रधान साधन मानता है। वास्तव में आज के एकांकी साहित्याध्ययन-क्षेत्र में इस प्रकार की दृष्टि बहुत कुछ अपेक्षित है।

कहानी, नाटक तथा उपन्यास की आलोचना में लेखक विशेष विचार प्रधान तथा विश्लेषणात्मक हो उठा है। रचना-क्रम से भी यह उसकी प्रौढ कृतियाँ प्रतीत होती हैं। फिर भी काव्य सम्बन्धी लेखों की तन्मयता इन रचनाओं से उपलब्ध नहीं होती। यह प्रधानतया परिचयात्मक तथा विश्लेषणात्मक हैं। रवि बाबू की कहानियों की तुलना मे प्रसाद की कहानियाँ उपस्थित करके लेखक ने सूक्ष्म कलात्मक दृष्टि का परिचय दिया है।

प्रस्तुत सग्रह मे लेखक के कवि-गुरु रवीन्द्र सम्बन्धी दस निबन्धों का सकलन है। कवि-परिभाषा तथा रवि बाबू की काव्यालोचना के उपरान्त लेखक ने गद्यकार के रूप मे भी उनकी आलोचना प्रस्तुत की है। इस प्रदक्षिणा मे, पता नहीं क्यों शिव निर्माल्य के समान रवि बाबू के निबन्ध-साहित्य की उपेक्षा हो गई है। अस्तु।

सक्षेपत., वाजपेयी जी के इन निबन्धों में भावुकता, भाषाधिकार, कला-प्रेम तथा सूक्ष्म विवेचन शक्ति के सयुक्त दर्शन होते हैं। गम्भीर अध्ययन की अन्तर्धारा आदि से अन्त तक व्याप्त दृष्टिगत होती है। काव्य के मधुवेष्टन ने इन रचनाओं को हृदयस्पर्शी तथा मनोरम बना दिया है। बगला की भाव-प्रधान शैली के लेखक महाकवि निराला की परम्परा को वाजपेयी जी ने आगे बढाने का प्रयत्न किया है। हमें आशा है कि भविष्य में वाजपेयी जी अपनी सशक्त सुकुमार लेखनी से हिन्दी साहित्य को श्रेष्ठ साहित्य प्रदान करते रहेंगे। तथास्तु।

—व्रज किशोर मिश्र

हिन्दी विभाग, विश्वविद्यालय, लखनऊ
१–९–५७

डाक्टर व्रज किशोर मिश्र
एम ए, पी एच डी

लेखकीय

यद्यपि 'रवीन्द्र साहित्य की प्रदक्षिणा' मेरी प्रथम कृति है, परन्तु इसने अनेक ग्रीष्म, शरद् एवं वसन्त ऋतुओं का अनुभव किया है। महाकवि कालिदास, ऋषि वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय, विश्वकवि रवीन्द्रनाथ एवं महाकवि जयशंकर 'प्रसाद' तथा जयदेव, विद्यापति और देव के काव्य एवं साहित्य के अध्ययन करने में मैंने अपने जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत किए है। मैंने इन कवियों के काव्य का अध्ययन किसी परीक्षा मे उत्तीर्ण होने मात्र के लिए नहीं किया, और न शीघ्रातिशीघ्र साहित्यिक गोष्ठियों में लब्ध प्रतिष्ठित होने के ही लिए प्रसाधन जुटाए है, परन्तु हॉ, पूज्य पिता पं० व्रजभूषणदास वाजपेयी के श्री चरणों के समीप बैठकर मुझे भागवत धर्म की शिक्षा-दीक्षा एवं श्रीमद्भागवत के अध्ययन एवं चिन्तन का सुअवसर मिला है, और यही भाव कदाचित् उपर्युक्त कवि-कोविदों के अनुशीलन में सहोदर भ्राता की भॉति प्रेरणा देता रहा है।

संस्कृत को अपनी पैतृक सम्पत्ति समझकर, वंग भाषा और आंग्ल भाषा को उपार्जित संस्कार जानकर, तथा माता की गोद मे बैठकर, प्रथम प्रथम जिस वाणी में बोलना, सोचना, विचारना आरम्भ किया, भला इन ऋणों से कैसे उऋण हो सकता हूँ। अतएव 'वन्दे मातरम्' के मन्त्रोद्गाता ऋषि वंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के उपरान्त 'जन-गण-मन अधिनायक

रवीन्द्रनाथ का जन-मन-मुग्धकारी वाङ्मय हिन्दी भाषा के मन्दिरों मे प्रतिध्वनित होता रहे, क्योंकि वे कालिदास और जयशंकर 'प्रसाद' की तरह हमारे सांस्कृतिक कवि हैं, इस आशा और आकांक्षा से मैंने गुरुदेव के साहित्य की प्रदक्षिणा के संस्मरण प्रस्तुत किए हैं।

मै वग प्रान्त का निवासी नहीं हूँ, और न मैं इसे अपनी अतिरिक्त योग्यता ही समझता, परन्तु श्रद्धा और विश्वास का संवल इस प्रदक्षिणा में नवजीवन का सञ्चार करता रहा है। इस कवि से, कालिदास, जयदेव और जयशंकर 'प्रसाद' की तरह इतनी ममता हो गई कि जिसका वर्णन करना 'मूकास्वादनवत्' प्रतीत होता है। मुझे नवद्वीप और वृन्दावन की लीला बड़ी मधुर लगी, और जब यह माधुर्य मुझमें न समा सका, तब स्वत' उफना-उफनाकर लिपिबद्ध होने लगा। रवीन्द्र की वाणी मे मुझे विश्वजनीन शान्ति एवं मैत्री का मन्त्र मुखरित मिला, और साथ ही नवद्वीप के प्रेमावतार महाप्रभु चैतन्य देव की जीवनसंगिनी विष्णु प्रिया के मधुर एवं करुण कण्ठ का सा आरती गान उद्भ्रान्त प्रेम मे हाहाकार करने लगा है, मधु-माधव एव प्रिया पृथिवी के अन्तरग परिचय ने कवि गुरु रवीन्द्र की प्रदक्षिणा करने के लिए मुझे प्रेरित किया—

'प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया' चैतन्य के विरह में वृन्दावन के नटवर के रास के विलास की मधुर ध्वनि विष्णु प्रिया के रोम-रोम को पुलक से प्रफुल्लित करने लगी थी, ठीक इसी प्रकार गुरुदेव की भारती ने मेरी अन्तरात्मा को आनन्द विह्वल कर दिया है। मैं दासानुदास बनकर उन्हीं देव और देवी का गुणानुवाद गाते-गाते आत्मविभोर हो गया हूँ। मै श्रान्त पथिक की भाँति व्रज के करील कुञ्जों की छाया में विश्राम करता हुआ धूल धूसरित हो गया हूँ, इसका मुझे अतीव गौरव है, परन्तु विश्राम का अर्थ श्रम का विराम नहीं, अतएव

'प्रदक्षिणा' के मनोरम दृश्यों को, तरणि तनूजा के तटों को सुशोभित करनेवाले तमाल तरुवरों की शीतल छाया में बैठकर लिपिबद्ध कर दिया है। मुझे बहुत ही प्रसन्नता है कि मैंने अपने हृदय के उल्लास को अपनी राष्ट्रभाषा में उन्मीलित किया है। मेरे श्रम और विश्राम का आशय कवि-हृदय-मनीषी ही समझेंगे। मैंने स्वान्तः सुखाय प्रदक्षिणा की है, परन्तु गलदश्रु भावुकता के कारण च्युति-विच्युति का हो जाना स्वाभाविक है, अतः विद्वज्जन अपने कान्ता-सम्मित-शब्द-कदम्ब से मुझे निर्देश देकर अनुगृहीत करेंगे, ऐसी मैं उदार मनीषियों से आशा करता हूँ।

मेरा भारतवर्ष पावन तीर्थ है। इसकी प्रदक्षिणा करने के लिए मैं गुरुदेव के काव्य को कालिदास का मेघदूत समझ बैठा हूँ क्योंकि :—

'कामार्त्ता हि प्रकृति कृपाणश्चेतनाचेतनेषु'

यद्यपि मुद्रण कला की चपेट में कुछ शब्दरत्न कबूतर की तरह कलाबाजी खा गये हैं, तथापि विद्वान् पाठक 'शोभायमान को 'शोभमान' आदि पढ़कर मुझे और मेरी कृति को उत्साह प्रदान करेंगे।

मैं अपने श्रद्धेय गुरुवर डा० भगीरथजी मिश्र तथा डा० ब्रजकिशोर जी मिश्र एवं डा० त्रिलोकी नारायण जी दीक्षित का बड़ा अनुगृहीत हूँ, जिन्होंने अपने 'दो शब्दों' और प्रस्तावना से मुझे आशीर्वाद दिया है। इसके अतिरिक्त 'हिन्दी साहित्य मण्डल' लखनऊ के अपने बन्धु-बान्धवों का मैं बड़ा कृतज्ञ हूँ जिनकी गोष्ठी में बैठकर मैंने विचारों का विनिमय किया है। बन्धु प्रवर श्री लक्ष्मी शंकरजी मिश्र 'निशंक' 'श्री आचार्य भारतीय' श्री गिरीशजी त्रिपाठी, श्री दुर्गा शङ्करजी मिश्र तथा प्रियबन्धु पं० गंगारत्न जी पाण्डेय का मैं सर्वदा आभारी

रहूँगा, जिन्होंने मुझे अपना भ्राता समझकर भाँति-भाँति की सम्मतियाँ दी हैं।

मेरे प्रकाशक पं० गंगाप्रसाद जी शुक्ल ने मुझे हिन्दी साहित्य के मन्दिर में प्रविष्ट होने के लिए प्रवेशपत्र दिया, अतः आप का मै चिर कृतज्ञ रहूगा। वंग प्रान्त के सभी आलोचकों सम्पादकों एवं शिल्पियों का मैं अत्यन्त आभारी हूँ, जिनके ग्रन्थों-कृतियों एवं पत्र-पत्रिकाओं का मैं नियमित रूप से अध्ययन करता रहता हूँ।

फलतः

ममेदानीं राष्ट्रभाषा प्रसीदतु।

आश्विन नवरात्र
सं० २०१४

अवध प्रसाद वाजपेयी
कान्य कुब्ज कालेज
लखनऊ

प्रकाशकीय

राष्ट्र-भाषा हिन्दी के उन्नायक-क्षेत्र के प्रगतिशील लेखक पं० अवध प्रसाद वाजपेयीजी ने जिस गम्भीर चिन्तन-मनन एवं अध्ययन-शीलता का पुस्तक में अपनी लेखनी द्वारा दिग्दर्शन कराया है उससे पाठक वृन्द तो प्रसन्न व तृप्त होंगे ही, मैं स्वतः 'जन-गण-मन अधिनायक' व 'व्यास कबीर व उनकी भागवत रति' इन दोनों लेखों को सुनकर ही इतना प्रभावित हुआ कि इस पुस्तक के प्रकाशन करने का संकल्प कर बैठा। और आज उसे संयोग वश पुस्तकाकार रूप में आप सबके सम्मुख उपस्थित करते हुये मुझे अपार हर्ष है।

इस पुस्तक के भूमिका लेखक व दो शब्द देकर पुस्तक के महत्व को बढाने मे हमारे मनीषिआचार्यों ने जो भी सहयोग हमे दिया है हम उन सबके कृतज्ञ हैं, तथा जनता जनार्दन के सम्मुख पुस्तकाकार रूप मे उपस्थित करते हुये हमें यह कहने मे संकोच नही होता कि बंगला ही नहीं अन्ताराष्ट्रीय अंगरेजी भाषा के कवीन्द्र गुरुदेव की कला कृतियोंको हिन्दी साहित्य मे प्रकाशित करने मे हमें आत्म शान्ति का अनुभव हुआ। यदि हमारे इस प्रयास का समुचित आदर होता है तो मै अपने को धन्य समझूँगा।

गङ्गा प्रसाद शुक्ल

जन-गण-मन-अधिनायक

कवि

कवि जन-गण-मन अधिनायक होता है। उसकी कविता जन जन की अनुभूतियों का उच्छ्वास होती है। उदात्त मानवात्मा को उपनिषदों मे कवि, मनीषी आदि संज्ञाओं से इसीलिए अभिहित किया गया है कि उसे "रसो वै सः" के सौन्दर्य की उपलब्धि होती है। कवि की जन-जीवन की अनुभूति काव्य-जगत् मे हृदयावेग के प्रकाश का संवाहन करती है। हृदयावेग का प्रबल संगीत जब शहनाई के पतले स्वरों से फूट-फूटकर उच्छ्वसित होने लगता है तब सर्वसाधारण का हृदय रो पड़ता है। कवि जन जीवन की हृत्तन्त्री के करुण क्रन्दन एवं मधुर-मिलन का संगीत अवनि-अम्बर मे मुखरित करता है। 'रसो वै सः' की सौन्दर्य सृष्टि विश्वव्यापी है। अतः रास के विलास की मधुर ध्वनि सुनकर जितना कवि आनन्द से आप्लावित होता है, उतना ही जन-जन के प्राणों का करुण-सगीत सुनकर विषाद-विह्वल। कवि मे भावना शक्ति एवं संवेदनशीलता अन्य मनुष्यो से अधिक तीव्र होती है। अतएव वह ससार की समस्त सुन्दर एवं कोमल भावनाओं को आत्मसात् करके काव्य का प्रणयन करता है। अनुभूति के अन्तर्गत यही भाव सत्य एवं भाव-सत्य-साहित्य लोक की मर्म ध्वनि है। सत्य के चिरञ्जीवी आलोक मे सुन्दर का अभिषेक होता है :—

"उतला कलापी केकाकलरवे विहरे ।
निखिल-चित्त-हरषा ॥
घन गौरवे आसि छे मत्त वरषा" (वर्षामंगल)

रूप के साथ रूपी का सयोग अवश्यम्भावी है । श्याम घन में श्याम-सुन्दर का अप्रतिम सौन्दर्य देखकर कुहक-कुहक कर मनमयूर नाच उठते हैं । वनभूमि तमाल की तरुराजियों से और अधिक सुशोभित होने लगती है । प्रकृति और पुरुष, रूप और रूपी, भक्त और भगवान्, धरा और गगन नवदूर्वादलश्याम की शोभा में अभिनिविष्ट दिखाई देते हैं । महाकवि कालिदास ने मगलप्रद वर्षा के समागम में, 'मेघदूत' की कल्पना के अन्तर्गत, श्यामसुन्दर के जन-मन मुग्धकारी रूप-रस का निम्नलिखित पंक्तियों में उन्मीलन किया है—

रत्नच्छाया व्यतिकर इव प्रेक्ष्य मे तत्पुरस्तात् ।
वल्मीकाग्रात् प्रभवति धनुः खण्डमाखण्डलस्य ॥
येन श्यामं वपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते,
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेशस्य विष्णोः । (मेघदूत)

अर्थात् मेघके शरीर में इन्द्रधनुष के रग-वैचित्र्य के सत्स्पर्श से शिखि-पुच्छ-धारी गोपवेश विष्णु के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति होती है । कवि वर्षा में श्यामसुन्दर के सौन्दर्य का चित्रण अर्थवैशिष्ट्य की दृष्टि से उपयुक्त समझता है । वर्षा अन्य ऋतुओं की अपेक्षा जन-जीवन के अधिक निकट है । जन जन के जीवन में आनन्द और उल्लास का सचार करने वाली वर्षा पीयूषवर्षि श्री जयदेव की केलि-कला में लोक से लोकातीत सौन्दर्य की अवतारणा करती है । लोकनायक श्रीकृष्ण अपनी आह्लादिनी शक्ति से अवतीर्ण होकर रस-विलासी एवं रसपिपासु प्राणों को निषिक्त करने के लिए—'एकाकी नैव रमते' का सर्वोत्तम अभिनय करते हैं । कदाचित् उन्हें इस धरा-धाम को तीर्थ बनाना अभीष्ट है । कवि जयदेव अपने 'गीत गोविन्दम्' के प्रथम श्लोक में रहस्यमय अपार्थिव प्रेम का

सूत्रपात करते हैं। यद्यपि कवि का वर्णनीय विषय है वासन्त रास का केलि-कलाप; परन्तु कवि इसका उद्घाटन करता है कि आकाश मेघों से मेदुर है; वनभूमि तमाल से श्यामल है; और फिर रात हो गई है; भीरु श्रीकृष्ण को साथ लेकर—'हे, राधे ! तुम गृह जाओ।' 'इस प्रकार नन्द निदेश से प्रेरित यमुना के कूल की विजय—केलि जययुक्त हो'। पथ के वृक्षों के नीचे सघन कुंजों मे क्रीडामोदी लोकनायक एकाकी रहने मे असमर्थ है। अतः वह धरणी के धूलि—पथ पर अपने लाल चरणों की छाप छोड़ता हुआ नूपुरों के रुनुक-झुनुक से मनुष्यों के हृदय-मन्दिर मे ही नहीं, प्रत्युत पशु-पक्षी कीट-पतग एवं लतागुल्मादिकों के भी वृन्त जाल मे जाकर अपनी मनोमोहिनी मुरली का निनाद करता है। वर्षा के रस से अभिषिक्त प्रकृति अपनी सौभाग्य सम्पदा से श्यामसुन्दर का आलिंगन करने के लिए ललक उठती है। भक्त वैष्णव कवियों की दृष्टि-भगिमा लोक और लोकातीत विभूति का समन्वय करके वर्षा मे श्यामसुन्दर की धरणी के धूलि-पथ को आँसुओं से सिक्त करके शस्यश्यामल बना देती है :—

"भिजई हौं रोम-रोम आनँद के घन, छाई
बसी मेरी आँखिन में अवनि गुपाल की।"

भक्त कवि घनानन्द का मेघ प्रेम एवं विरह की पीर को उतनी ही तीव्र अनुभूति रखता है जितनी सर्वसाधारण प्राकृत जन; परन्तु कवि और प्राकृत जन के भाव प्रदर्शन में महान् अन्तर है। सम्भवतः इसी लिए यमुना के हृदय पर अथवा पुलिन के सुदूर कूलों तक श्याम घन छा गये है। कवि केवल यही कहकर सन्तोष नहीं करता है, वरन् 'केलि-कोलाहल' मे यमुना के तट पर उद्भ्रान्त प्रेमी घनानन्द भाव विभोर हो जाता है। भावा वेश मे विषय वस्तु का विस्मृत हो जाना एक मनोवैज्ञानिक सत्य है, परन्तु घनानन्द असंख्य विहंगों की वैचित्र्यपूर्ण काकली में तथा विलास विभ्रम मे 'पपीहे का पन' नहीं भूलते। वासनामूलक उद्वेग में प्रिया या प्रियतम का भुजाओं में भर कर अगणित बार चुम्बन करना जन-गण मन का

व्यवहार है। इस व्यवहार की अनुभूति प्राकृत मनुष्य को जितना परेशान करती है उतना ही कवि हृदय को भी व्यथित करती हैं। परन्तु अन्तर है। आँसुओं से भरी कवि की डबडबाई आँखों में प्रेमाम्बु तथा हृदय की पीर पपीहे की पीउ कहाँ ! पिउ कहाँ !! की अतृप्त पिपासा में परिणत होकर अनन्त काल तक अजस्र प्रवाहित रहती है। कवि घनानन्द की गोपी एव जयदेव की राधा तथा कालिदास की यक्षिणी काव्य के अन्तर्गत सवेदन शील सौन्दर्य, प्रबल-आसक्ति एव अन्तर्गूढ़ व्यथा आदि की मार्मिक अभिव्यक्ति हैं। भारत के ही कवि प्रकारान्तर से अपनी अनुभूतियों का चित्रण करते हों ऐसा नहीं है, वरन् पाश्चात्य जगत् के विख्यात कवि वर्ड्स वर्थ, शेली और जॉन कीट्स ने भी प्रेमोत्सव की कविताओं मे जन-गण के मन की अनुभूति—वस्तुत. कवि की अपनी अनुभूति है,

निम्नलिखित पक्तियों मे उन्मीलित की हैं :—

"I met a lady in the Meads, "
Full beautiful—a fairy's child", } (John keats)

''I saw her singing at her work'
And over the sickle bending,
I listened, motionless and still,
And, as I mounted up the hill,
The music in my heart I bore
Long after it was heard no more.

(*W*. Wordsworth)

'कवि वर्ड्सवर्थ की सुन्दरी खेतों में—प्रफुल्ल वदना प्रकृति की गोद में, मगलप्रद सौन्दर्य मे, मधुमयी सगीत मुखरित करती है। कवि तन्मय होकर सुनता रहा और देखता रहा,—सगीत एव सौन्दर्य की अपूर्व समष्टि, प्रतिच्छवि मानस मे चित्रित होती जा रही है।' चतुर्दिक विस्तीर्ण हरिताभा एव फलभर से झुकी सुनहली बालियाँ देख-देखकर सुन्दरी का स्पर्श-कातर-

मन पुलकित होता है; यह वस्तुतः सत्योपलब्धि है; परन्तु कवि के संवेदन-शील मानस में इस सत्य की अनुभावित प्रतिच्छवि जिस प्रकारान्तर से परिव्याप्त हुई है; वह जन-गण-मन की व्यापक आनन्द की उपलब्धि है।

गुरुदेव रवीन्द्र का काव्य अनुभूति-सम्पन्न जन-गण-मन का अधिनायक है। कहीं बाग बगीचों में कोकिल का कलकण्ठ गूँज रहा है, तो कहीं मयूरों का तारस्वर वन-प्रदेश को प्रतिध्वनित कर देता है। खेतों की फैलती हरियाली में लहराती खेतों की अधपकी बालियों का चुम्बन करने के लिए तरुणशुकों की पंक्तियाँ आम्र-मधूक की तरुराजियों पर बैठी ललचा रही हैं। कहीं काश-कुसुम की धौत आभा प्रकाशमान है, तो कहीं शरदिन्दु, कुन्द एव घनसार की तरह समुज्ज्वल मराल की मालायें झँकार करती हुई सुरसरिता के पुलिन पर स्वच्छन्द विहार कर रही हैं। लहलही लोनी लताओं में चहचहाते पक्षियों के झुण्ड रह-रहकर अपने-अपने चंचुओं से एक दूसरे को चूम रहे हैं। रवीन्द्रनाथ ने पशु-पक्षियों के मनोभावों को समझने के लिए उनके व्यवहार को बड़ी सावधानी से देखा है। सम्भवतः उनका अभिप्राय रहा होगा कि प्रकृति के उन्मुक्त परिवेश में मानव की भी ऐसी ही प्रचेष्टायें होती हैं। शनैः शनैः समाज के सुसंस्कृत वातावरण में उसकी अवांछनीय वासनाओं का संस्कार हो जाता है, परन्तु निसर्ग उसकी सुषुप्त वासनाओं को जाग्रत करता है। अतः विशुद्ध प्राकृत मानव किस प्रकार का होगा इसको देखने की लालसा बनी ही रहती है, इस अभाव की पूर्त्ति गुरुदेव रवीन्द्र ने पशु पक्षियों की प्रचेष्टाओं एवं उनके अंगविन्यास के वैचित्र्यपूर्ण विभ्रम में तो प्रस्तुत किया ही है, साथ ही मानव-मन को समझने में भी इन व्यवहारों से बहुत बड़ी सहायता ली है। रवीन्द्र-काव्य के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह कवि केवल उल्लास का ही कवि नहीं है; अपितु मानव-मन की विभिन्न वासनाओं आशा एवं आकांक्षाओं के साथ ही साथ विषमताओं एवं विभीषिकाओं का भी अधिनायक है। जिस प्रकार कविवर शेली को प्रकृति के दृश्यों में झंझावात, प्रबल प्रभंजन-

सागर की उत्तालतरगे, नदी का स्रोत, आकाश की नीलिमा का प्रखर प्रकाश, तथा गुहामुखनिसृत आवर्तमान प्रवाह आदि अधिक प्रिय थे, और इन्हीं विषयों को कवि ने प्रकारान्तर से चित्रित भी किया है, इसी प्रकार कवीन्द्र रवीन्द्र ने भी जन-गण-मन को अनुप्राणित करने के लिए जातीय एव राष्ट्रीय भावोच्छ्वास का प्रशस्त उत्कर्ष प्रस्तुत किया है। पद्मा नदी की जलधारा स्थिर अशात है, उसकी अनन्त यात्रा आवर्त्त-बुद्बुद् तरगमयी है, आकाश मेघाच्छन्न है, गुहानिसृत जलस्रोत सूर्य के देदीप्यमान प्रचण्ड प्रकाश से प्रकाशित हो रहा है। पद्मा वग-प्रान्त की नदी है। इसके प्रति गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का भाव अत्यधिक श्रद्धान्वित है। कवि ने स्वय भानुसिह पत्रावली में लिखा है :—

"नदी आमि भारि भालोवासी, आर भालोवासी आकाश।"

भानुसिंह पत्रावली, पत्र ४९

कविगुरु रवीन्द्र जल-प्लावन तथा गुरु गर्जन की मन्द्रिलध्वनि सुनने के लिए लालायित हुए हैं। आपकी निम्नलिखित पत्तियाँ 'वर्षा-मगल' से उद्धृत की गई हैं :—

ऐ आसे ऐ अति भैरव हरषे
जल सिंचित क्षितिसौरभ-रभसे
घन गौरवे नवयौवना बरषा
श्याम गम्भीर-सरसा।
गुरु गर्जने नील अरण्य सिहरे ..
. ...
. ...

ओ, देखो! भैरव अट्टहास से वर्षा आ रही है। जल से सिक्त पृथ्वी से सुगन्ध—सोंधी-सोंधी गन्ध, के प्रबल झकोरे आ रहे हैं। पयोधर के पीनोन्नत भार से अभिनव युवती वर्षा का ऋतु समागम है। श्यामाभा से युक्त गहरी घटाओं वाली रसीली श्यामा वर्षा मनोमोहिनी है। कृषक का मन,

कवि की अन्तरात्मा मे सन्निविष्ट होकर उल्लसित हो रहा है। और कवि की अन्तरात्मा श्यामा वर्षा की रूप माधुरी मे निमग्न हो रही है। प्रकृति के सहवास मे संतप्त मानवात्मा को सान्त्वना मिलती है। व्यथित हृदय शेली कहता है :—

O wild west wind........
....

Oh, lift me as a wave, a leaf, a clould!
I fall upon the thorns of life! I bleed!

'अरी उद्दण्ड पछुआ हवा ?......तू मुझे लहर की तरह, एक पत्ती की तरह, तथा मेघ की तरह उठा ले ! मैं जीवन के शूलों मे अनुबिद्ध हूँ ! मेरे शरीर का खून प्रवाहित हो रहा है।'

उपर्युक्त पक्तियों में कवि के व्यथित हृदय की अनुभूति व्यक्तिगत होते हुए भी जन-गण-मन की अन्तर्गूढ़ व्यथा को साकार कर देती है। यद्यपि शेली प्रकृति की गतिशीलता मे विश्वास तो करता है, शायद इसी से कुछ-कुछ आशान्वित भी होता है—

"O" wind,
If winter comes, can spring be far behind?

परन्तु यह कवि की सम्भवतः सम्भावित कल्पना मात्र है। शेली की कविता में मानव-मन की भावना-ग्रन्थि का उन्मोचन नहीं, ज्यो का त्यों उन्मीलन प्रस्तुत है। इसे Intellectual beauty कहा जा सकता है अथवा भावना ग्रन्थि की विशद सौन्दर्यानुभूति। कवि अपने काव्य मे नियत गतिशीलता, चञ्चलता तथा परिवर्त्तन-प्रियता का चारु चोखा चित्रण करता है, साथ ही असीम आकाश के अनन्त क्षितिज से निस्सीम प्रकाश की उज्ज्वल रश्मियाँ भी उसे अभिभूत करती हैं। परन्तु शेली ने 'स्काइ लार्क' की तरह इटली के नीले आकाश के विच्छुरित प्रकाशपुंज की छाया मे बैठकर अपने जीवन के सुख-दुःख के दिन स्वच्छन्दता से बिताये हैं। कवि प्रकाश चाहता है। कवि

गेटे ने मरण के कुछ समय पहले उद्भ्रांत भाव से अथवा भावातिरेक से कहा था—"More light" गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अपने 'छिन्नपत्र' में लिखा है कि "यदि मुझे ऐसे समय में कुछ इच्छा प्रकट करनी हो तो मैं कहूँगा—,More light and more space!' बहुत से लोग वंग-प्रान्त को समतल भूमि कहने में आपत्ति प्रकट करते हैं ; किन्तु इसी लिए इस प्रान्त के खेतों के दृश्य तथा नदी के तीर के दृश्य मुझे सबसे अधिक अच्छे लगते हैं" कवीन्द्र रवीन्द्र के नयनों में वंग प्रान्त का अनन्त आकाश एवं नदियों का अजस्र प्रवाह मधु बरसा कर मधुमास का आवाहन करता है —

अयुत वत्सर आगे हे वसन्त, प्रथम फाल्गुने,
मत्त कुतूहली,
प्रथम ये दिन खुली नन्दनेर दक्षिण दुयारे
मर्ते एले चलि,
अकस्मात् दाँडाइले मानवेर कुटिर प्रांगणे
पीताम्बर परि,
उतला उत्तरी हते उड़ाइया उन्माद पवने
मंदार-मंजरी—
दले-दले नर-नारी छुटे एलो गृह द्वार खुलि
लये वीणावेणु,
मातिया पागल नृत्ये हासिया करिलो हानाहानी
छुँड़ि पुष्परेणु !

वंग-प्रान्त के शस्य-श्यामल वातावरण में मानव-जीवन के सुख-दुःख से उद्भूत होने वाली कविता में जन-गण मन की वेदनाभरी कूक कोकिल के पंचम स्वर से हूक नहीं पैदा करती ; क्योंकि वातावरण आम्र मंजरियों की मदमाती बयार से तथा पुष्परेणुरंजित जन-गण को हर्ष में विभोर जवानी को उकसाती ठिठोली से उल्लास पूर्ण है। गायकों की टोली सदलबल से रंग रोली उछालती हुई जीवन के दुःख-दैन्य को फागुन की

मस्ती में झुला देती है। आम्र-पनस- पलास एवं पीपल-पाकड़-ताड़ खजूर नूतन किसलयों से आच्छादित हो जाते हैं। उस समय ग्रामीणों का हृदय आनन्द से आह्लादित हो जाता है। ढफ-ढोलक मृदग पर रसिक नागरों की उँगलियाँ पुलक से नाच उठती हैं। आर्थिक कठिनाइयो के बीच रहकर भी ग्रामीण जन प्रसन्नता का अनुभव करते हैं। उनके हृदय को मधुर वातावरण शुष्क नहीं होने देता। मानव निर्मित सामाजिक एव राष्ट्रीय विषमतायें आकाश की समुज्ज्वल नीलिमा को तथा फूलों की मधुभरी हँसी को छीनने मे समर्थ न होंगी। भारतीय प्रकृति का ऋतु-परिवर्त्तन एवं तदनुसार पर्व-पार्वण का आयोजन जन-जन के मन को सच्चिदानन्द के लोक के अन्तर्गत अलौकिक ऐश्वर्य की ओर आकृष्ट करता रहेगा:—

आवत रे ऋतुराज वसन्त।
खेलत राई कानु गुनवन्त॥

तरुकुल मुकुलित, अलिकुल धाव।
मदनमहोत्सव पिककुल राव॥

दिन-दिन दिनकर भेलो किशोर।
शीत भीत रहुँ शीखर-कोर॥

मलयज पवन सहिते भेलो मीत।
निरखि निशाकर युवजन हीत॥

सरवर सरसिज श्यामल लेहा।
ज्ञानदास कहे—रस निरवाहा॥ (ज्ञानदास)

ऋतुराज वसन्त के आगमन मे गुणवन्त कान्ह का केलि-कलाप बंग-वैष्णव कवि ज्ञानदास देख रहे हैं। भक्त का मानस प्रकृति की मनोहारिणी साज-सज्जा में अनिर्वचनीय प्रेम के स्वरूप का साक्षात्कार कर रहा है। मधुमास के उत्सव में मधुसूदन की सेना का अभिमान हो रहा है। अतः ऋतुराज स्वागत-करने के लिए समुत्सुक है:—

नव—पलाशपलाशवनं पुरः स्फुटपरागपरागतपंकजम् ।
मृदुलतान्तलतान्तमलोयत् ससुरभिंसुरभिंसुमनोभरैः ॥ (माघ)

महाकवि माघ ने मधुसूदन की क्लान्त सेनाका स्वागत बहुत कोमल-कान्तपदावली में किया है। कृष्ण का हृदय वज्रादपि कठोर है और कुसुमादपि मृदुल। संस्कृत वाङ्मय में कवि ने सम्भवतः इसी भावना से अपनी क्लिष्टसाध्य यमक-योजना में सुललित सौकुमार्य का विन्यास किया है। परन्तु भक्त ज्ञानदास की पदावली भक्त की भोली-भाली तुतली बोली है। माघ ने मधुमास में ओज और माधुर्य का अपूर्व समन्वय किया है, परन्तु कालिदास का ऋतुराज 'कुमारसम्भवम्' के लिए सम्भोग शृङ्गार को उद्दीप्त करके शिवशंकर की समाधिमुद्रा में उच्चाटन पैदा करता है:—

'मधु द्विरेफः कुसुमैक पात्रे पपौ प्रिया स्वामनुवर्त्तमानः'

. ...

... .

हरस्तु किंचित्परिलुप्तधैर्यश्चन्द्रोदयारम्भ इवाम्बुराशिः ।
उमामुखे बिम्बफलाऽधरोष्ठे, व्यापारयामास विलोचनानि ॥

'भगवान् शंकर चन्द्र के उदय होने से सागर की तरह कुछ अधीर होकर, बिम्बफल की तरह लाल लाल ओठों वाले पार्वती के मुख को तीनों आँखों से देखने लगे।' यह जन-मन का सत्य है। जिस पर कभी भी परदा नहीं डाला जा सकता। हम भले ही अपनी एक कमजोरी को छिपाने के लिए सौ मिथ्या बातें बनायें, परन्तु प्राकृतिक प्रवृत्तियों की ओर से हम मुँह नहीं मोड़ सकते, क्योंकि वे हमारे दामन से बहुत अच्छी तरह से लिपटी रहती हैं। कालिदास मानव-मन के इस सत्य को भली-भाँति समझते हैं। अत. उनका 'मेघदूत जन-गण-मनकी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावलहरियों का उन्मेष करता है—

''मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथा वृत्ति चेतः ।
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ।''

मेघदर्शन से सुखी मनुष्य का भी चित्त स्थिर हो जाता है, विरही व्यक्ति की तो बात ही क्या। अलकापुरी मे सब समय सभी ऋतुयें विराजमान रहती हैं, उसी सुख प्रदेश मे सुन्दरियाँ फूलो से सुसज्जित रहती हैं। उसी सुख-प्रदेश में 'दुर्वहविरहखिन्ना' बन्धुपत्नी को मेघ देखने मे समर्थ होगा—

'तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी'

जन-गण-मन के साथ विश्वप्रकृति का अति निगूढ सम्बन्ध है, अतएव इसका उत्कृष्ट प्रमाण विभिन्न ऋतु समागम मे मानव-हृदय की विभिन्न भाव लहरियों के उन्मेष से मिलता है, इन्हीं भावों की आवर्तित तरगों का उपर्युक्त अनेक उद्धरणों मे चित्रण किया गया है। भारतीय कवियों की भावनाये श्रृङ्गार मे सम्भोग और विप्रलम्भ की तीव्र अनुभूति का उन्मीलन करती हैं। श्रृङ्गार की विभिन्न चेष्टायें भारत की ऋतुओं से अनुप्राणित होकर विश्वजन-विमोहन काव्य में चिरन्तन विरह मिलन की सत्योपलब्धि को मूर्त्तिमान करती हैं। कवि शेली सौन्दर्य-लक्ष्मी की प्राणमयी चेतना को अपनी आत्मा मे प्रतिष्ठित करके आराधना करने लगता है। फलतः उसकी आराध्य लीला-सगिनी उसकी आत्मा का स्वरूप बनकर उसे पेड़-पौधे लता पुष्पादि मे सन्निविष्ट दिखाई देती है:—

Rarely, rarely, comest thou, spirit of Delight!
Wherefore hast thou left me now
Many a day and night?
Many a weary night and day
'Tis since thou art fled aury.
....

I love all that thou lovest
Spirit of delight!
The fresh Earth in new leaves dressed,
And the starry night;

Autumn evening, and the morn
When the golden mists are born
. .. .

I love snow, and all the forms
Of the radiant frost
I love waves, and winds, and storms
Every thing almost
Which is Nature's . ...

"रवीन्द्र तथा शेली का शिल्पधर्म सजातीय है। वैष्णव कवियों के लिरिक के सस्पर्श से जैसे कवि की भाषा श्रुति-मधुर हो गई है, वैसे ही शेली के लिरिक ने भी कवि के मार्मिक भावों को अत्यधिक उद्वेलित किया है। वैष्णव कवियों की कोमल-कान्त-पदावली के ही साथ रवीन्द्रनाथ के शिल्प विधान की समता है। कवि ने जीवन-देवता को 'लीलासगिनी' काव्य लक्ष्मी के रूप में रूपायित किया है। कवि की 'लीलासगिनी' नामक कविता के साथ शेली की उपर्युक्त पक्तियों का भावगत सादृश्य दृष्टव्य है। विस्तारभय से कवि रवीन्द्र की सुन्दर पक्तियों की अक्षरशः व्याख्या ही प्रस्तुत की जा रही है। कविगुरु रवीन्द्र वर्णन करते हैं। "द्वार के बाहर देखने मात्र से दृष्टिपथ में अति परिचित अनुपम सौन्दर्यमण्डित प्रियतमा लीलासगिनी की मूर्त्ति मिली। यौवन में जिसका मोहिनी रूप समस्त हृदय एव मन को सौन्दर्य से निषिक्त कर देता, वही काव्य-लक्ष्मी इतने समय मुझे कार्य में फँसा कर कहाँ दूर चली गई थी।" इसके बाद कवि 'लीलासगिनी' को सम्बोधन करके कहता है:—

"शायद आज फिर पुराने प्रेमी की याद आई? इसी लिए तुमने पुराने परिचित स्वर से, किंकिणी ध्वनि करके मुझे सचकित कर दिया है?

तुम्हें मै करीब करीब भूल ही गया था "जीवन की गोधूलि के क्षणिक प्रकाश में पुन. पहचान सका।"

यौवन में कवि ने जिस सौन्दर्य-संगिनी के निकट लिरिक लिखने की प्रेरणा प्राप्त की थी, जीवन के सायाह्न में उसी भावना ने फिर अनुप्राणित किया। कविगुरु रवीन्द्र ने द्वितीय स्तवक में बड़ी आत्मीयता से पुरानी अनुभूत बातों की जानकारी प्राप्त की है :—

"पहले की तरह आज भी क्या तुम बिखरे लम्बे केशों से परिमल बहा लाई हो ? वसन्त के बकुल गन्ध के भीतर सिर्फ वर्तमानकालिक सौन्दर्य का ही परिचय नहीं मिलता; इसके साथ और अनेक वसंतों का रूपसम्भार सम्बद्ध है। 'कल्पना' की 'वसंत' कविता में कवि ने इसी भाव का विशदीकरण किया है:—

'सेइ पुरातन सेइ चिरन्तन अनन्त प्रवीण
नव पुष्पराजि
वर्षे वर्षे आनियाछो, ताइ लये आजो पुनर्वार
साजाइले साजि ।
ताइ सेइ पुष्पे लिखा जगतेर प्राचीन दिनेर
विस्मृत वारता
ताइ तार गन्धे भासे क्लान्त लुप्त लोक-लोकान्तेर
कान्त मधुरता ।'

तात्पर्य यह है कि प्रकृति की सौन्दर्यराशि तुम्हारे ही आविर्भाव का संकेत करती है। तुम प्राणवन्त तथा गतिमय हो, इसी लिए तुम में चिरन्तन चांचल्य विद्यमान है। महाकवि देव ने मानव-मन की इसी प्राणप्रतिम, गतिशील, चंचल परिवर्त्तन-प्रियता की साजसज्जा को मूर्त्तिमान किया है:—

रच्यौ कचमोर सुमोरपखा धरि काकपखा मुख राखि अराल;
धरी मुरली अधराधर लै मुरली मुरलीन ह्वै 'देव' रसाल ।
पितम्बर काछनी पीत पटी धरे बालम वेष बनावति बाल ।
उरोजन खोज-निवारन को उर पैन्हीं सरोज मई मृदु माल ।।

कवि देव जन-जन की अनुभूतियों के चित्रकार हैं। देव बिहारी और मतिराम के काव्य के साथ लोगों ने यथोचित व्यवहार नहीं किया। आध्यात्मिकता की झोंक में इन कवियों के काव्य के साथ अन्याय करने वाले कमल को फूँक कर सुवर्ण की भस्म तैयार करने के नुसखे बहुत बना चुके हैं, लेकिन इन कवियों की शाश्वत सौन्दर्यानुभूति की नाटकीयता विश्वसाहित्य के रंगमंच पर शतदल की तरह अपनी अम्लान अरुणाभा सदा विकीर्ण ही करती रहेगी। महाकवि बिहारीलाल ने ग्रामीण स्त्रियों के हाव भाव की अपनी आँखों देखी छवि चित्रित कर दी है:—

> "नहिं अन्हाय, नहिं जाय घर, चित चहुँट्यो तकि तीर,
> परसि फुरहरी-लौं फिरति-विहँसति धँसति न नीर।"

इन कवियों को जनता का कवि न कहना काव्यरस के प्रति अपनी पाषाण प्रवृत्ति की हठधर्मिता का परिचय देना होगा। काव्य-संगीत एवं कला मानवजीवन की उत्कृष्ट विभूतियाँ हैं। कवि जन जीवन के सत्यों का आकलन करके सौन्दर्य का चित्रण करता है, जिसकी अनुभूति जितनी प्रखर होगी उसके चित्र उतने ही हृदयग्राही होंगे। सौन्दर्य की अनुभूति सबको समान रूप से हो, यहाँ गणित के योग-वियोग के नियम नहीं लागू होते, वरन् अन्तरात्मा की भावुकता एवं संवेदनशीलता का नियम लागू होता है।

व्रजधाम में पुनीत वृन्दावन का विस्तृत वातावरण है, यमुना का सुनील निर्मल जल तथा हरी-हरी ललित लताओं के घने-घने कुञ्ज हैं, आम्र तमाल कदम्ब की अवलियों की छाया में स्वस्थ गायों और बछड़ों के झुण्ड के साथ उन्मुक्त ग्वाल बालों की मण्डलियाँ हैं। परमानन्दसन्दोह जनक राधा-कृष्ण के वेणुवादन एवं विलास-विभ्रम में वैष्णवभक्त कवियों के निकट काल्पनिक सत्य के अतिरिक्त, यदि और किसी प्रकार के सौन्दर्य एवं भाव भंगिमा का चित्रण हुआ हो तो उसे युग युगान्तर के प्यासे मानव-मन की अतृप्त-वासना की मार्गान्तरित रसनिषिक्त सृष्टि समझ कर [illegible] के प्रति सुकुमार बुद्धि होना अनिवार्य है। वैष्णव

कवियों की कोमल पदावली भागवतरति की ऐकान्तिक साधना में बहुजनहिताय एवं सर्वजनसुखाय प्रेम का प्रवाह है। प्रेम तो स्थविर नहीं है; वह नित्य, गति-शील है और गतिशील समझ कर ही तो वार-बार प्रेम की लीलाभूमि व्रजधाम का उल्लेख किया गया है। नित्य सिद्ध कृष्ण के प्रेम का प्रवाह निरन्तर जन-जीवन में प्रवाहित रहता है। देश काल एवं परिस्थिति के अनुसार उसमें विभिन्न प्रकार के आवर्त्त-बुद्बुद् एवं तरंगे देखी जाती हैं। जीव के स्वाभाविक प्रेम-प्रवाह मे बाधा आने पर, वह भिन्न-पथ-गामी हो जाता है। अतः उसे उत्कृष्ट स्थायिभाव के साथ सश्लिष्ट होना, जन-गण-मन में प्रेमराज्य वृन्दावन की स्थापना करना है।

हौं ही ब्रज, बृन्दाबन मोही मैं बसत सदा,
जमुना-तरंग स्यामरंग अवलीन की।
चहूँ ओर सुन्दर सघन वन देखियत,
कुञ्जनि मैं सुनियत गुञ्जनि अलीन की।
बंसी वट तट नटनागर नटत मो मैं,
रास के विलास की मधुर धुनि बीन की।
भरि रही भनक बनक ताल तानिनि की,
तनक-तनक तामैं झनक चुरीन की॥

कवि देव की अन्तरात्मा मे भागवत प्रेम की प्रतिष्ठा स्थायि रूप से हो चुकी थी, नहीं तो इतनी प्रवाहमयी भाषा मे जाग्रत प्रेम की प्रतिकृति अंकित नहीं की जा सकती, भावावेश मै मन की बात मन ही मे रह जाती है अथवा उद्वेग उद्भ्रान्त कर देता है। परन्तु कवि की सधी तूलिका अपने प्रेम-देवता की उल्लासमयी आनन्दानुभूति की प्रतिमा के परिधान का आदान प्रदान करती है। वंग वैष्णव कवि वृन्दावनदास और देव की निम्नलिखित पंक्तियों मे क्रमशः मन की साध और यौवन की विश्रब्ध वासना सुसंस्कृत रूप से चित्रित की गई है:—

बहु दिनेर साध आछे, हरि। वाजाइते मोहन मुरली ।।
तुमि लहो मोर नील शाड़ी। तव पीत धड़ा देहो परि ।।
तुमि लहो मोर गजमोती। मोरे देहो तोमार मालती ।।
.. ..

तुमि लहो सिन्दूर कपाले। आमार चन्दन देहो भाले

"हे हरि मेरी बहुत दिनों की साध है कि आपकी मुरली बजाऊँ। तुम मेरी नील साड़ी पहन लो और मैं—तुम्हारा पीताम्बर पहन लूँ, तुम मेरी गजमोतियाँ पहन लो और मैं तुम्हारी मालती माला पहन लूँ, तुम मेरा सिन्दूर धारण करो और मैं तुम्हारा चन्दन।" कवि की सुकुमार नाटकीयता केवल मन की साध है। वह अर्चना के विधुर गीतों में मानव-मनको निकट से समझने का निर्देश करती है। कवि देव इसी विश्रब्धालाप को प्रगाढ प्रीति का रूपक बनाते हैं.—

"हौं भई दूलह, वे दूलही, उलही सुख-बेलि सी केलि घनेरी।
हौं पहिरो पिय को पियरो, पहिरी उनरी चुनरी चुनि मेरी ।।"

सौन्दर्यस्रष्टा कवि का जो निर्दिष्ट पथ है, साधारण कर्मी जगत् का वह पथ नहीं है, यह जागतिक नियम धारा कवि के काव्य की प्राणधारा नहीं होती, अतएव रूढ़ वास्तववादी लोग कवि को विपथगामी समझ बैठते हैं। कवि का प्राण मन अज्ञात व्यथा के चाञ्चल्य से क्षण प्रतिक्षण पूर्ण होता रहता है और जीवन-देवता इस मोहग्रस्त कवि को प्रलुब्ध बना कर छन्दोमय सगीतमय एव सौन्दर्यमण्डित विश्व जगत् का प्रादुर्भाव करता है। गुरु देव ने इस तथ्य की ओर सकेत किया है.—

"वैराग्य साधने मुक्ति से आमार नय,
सहस्र बन्धन माझे महानन्द मय
लभिबो मुक्तिर स्वाद ....
मोह मोर मुक्तिरूपे उठिबे ज्वलिया
प्रेम मोर भक्तिरूपे रहिबे फलिया

ये किछु आनन्द आछे दृश्ये गन्धे गाने
तोमार आनन्द रवे तारि माझ खाने।"

आनन्दभगवान् के पुजारी रवीन्द्रनाथ ने पृथिवी के सकल पुष्पों को चयन करके तथा भक्ति-चन्दन के छीटों से पवित्र करके जीवन-देवता को समर्पण किया है। उनके उद्यान के पुष्प सिर्फ मनोरम ही नहीं हैं, उनमे सुरभित सुकुमार लाल चरणों की प्रतिकृति भी अंकित है। इसी लिए वे भानुसिंह नाम से पदावली लिखने के समय वैष्णवपदावली का अध्ययन करने मे निमग्न थे। उनकी अन्तरात्मा को वैष्णवपदावली का अपूर्व विश्वव्यापी भाव जन-गण-मन अधिनायक के रूप मे अनुप्राणित करने लगा। वैष्णव कवियों की पदावली ने कवि की वहिरंग जड़ता को ही सरस नहीं वनाया, प्रत्युत विश्वकवि की सुषुप्त चेतना में उद्बोधन की शखध्वनि भी निनादित की है। परन्तु हिन्दी के रीतिकालीन कवियों एव साधक भक्तो ने भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र मे जिस राष्ट्रीयता का जागरण किया, वह जातीय भावना राष्ट्रीय आन्दोलन तक ही सीमित रह गई। इसका कारण सम्भवतः यह था कि तत्कालीन परिस्थितियों ने हिन्दी के इस प्रतिभाशाली शिल्पी को विश्वोन्मुख न होने दिया। रवीन्द्र और भारतेन्दु समकालीन थे। परन्तु परिवेश एवं परम्परायें एक दूसरे से भिन्न थीं, यद्यपि प्रतिभा एवं कौशल के साथ ही भावुकता दोनों में समान थी। भारतेन्दु ने अपने जीवन के कुछ क्षणों में हिन्दी को जाग्रत शिल्प-विधान एव प्रबुद्ध राष्ट्रीय चेतना के साथ ही साथ अनन्त यौवना सरस्वती प्रदान की है। हिन्दी का यह वरेण्य अधिनायक वाराणसी के रसिकों एवं भावुकों को ही प्रेरणा नहीं देता, बल्कि विश्व के साहित्यिकों एवं शिल्पियों को विषम परिस्थितियों में कवि-धर्म की सरसता सिक्तता में परिणत न हो जाय, इसकी शिक्षा-दीक्षा के लिए अपने जीवन का आदर्श उपस्थित करके यशसौरभ से दिशायें सुगन्धित कर जाता है।

रवीन्द्र और भारतेन्दु समान रूप से वैष्णवपदावली से प्रभावित हुए थे। रवीन्द्र का वैष्णवपदावली से अनुप्राणित होना उनका अर्जित अधिकार था, परन्तु भारतेन्दु का तो जन्मसिद्ध अधिकार था। परन्तु रवीन्द्रनाथ

ने ऐसे वातावरण में जन्म लिया था कि उन्हें शेली के समकक्ष आने में तो कोई बात ही नहीं, विश्व के कहाकवियों के लिए आदर्श सिद्ध हुए। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अपने जीवनकाल में हो अनुभव किया था कि लोग वस्तुतः वैष्णवकाव्य की सरसता और अर्थतः शेलो की Intellectual beauty का उनके काव्य से रसास्वादन करते हैं। कवि रवीन्द्र ने स्वय लिखा है—

"आमाके तखन केहो केहो शेली वलिया डाकिते आरम्भ करिया-छिलेन—सेटा शेलिर पक्षे अपमान एव आमार पक्षे उपहास स्वरूप छिलो, तखन आमि कल भाषार कवि बलिया उपाधि पाइयाछि।" कवि रवीन्द्र ने स्वय अपने शब्दों में वर्णन किया है कि "मैं आकाश और प्रकाश को इतने अन्तर से प्यार करता हूँ। आकाश मेरा साकी है .. जहाँ यह मेरा सुवर्ण का मद सर्वापेक्षा सुनहला और स्वच्छ है, वहीं मैं कवि हूँ, वहीं मैं सम्राट् हूँ, वहीं मेरे साथ बराबर वहीं सुनील निर्मल ज्योतिर्मय असीमता का इस प्रकार व्यवधानहीन प्रत्यक्ष सयोग रहेगा।" अखण्ड अनन्त रूप कवि के सवेदनशील प्राणों में समाया रहता है। यह विश्व के रूप और रस की प्रतिच्छाया कवि को रुढभावों से पृथक् करके अनन्त आकाश में विचरण करने की प्रेरणा देती है। शेलो का 'स्काई-लार्क" अपार्थिव आनन्द का उन्मुक्त विहग मात्र है :—

In the golden lightning
Of the sunken sun,
Ouer which clouds ore brightening
Thou dost float and run,
Like an unbodied joy whose race is just befiun

. . ..
....

Thou art unseen, but yet I heor thy shrill delight :

वह विहग पार्थिव है, इसे कवि भूल कर स्वप्निल आनन्द में उद्भ्रान्त होकर इसी विहग के साथ उड़ने लगता है। यह अशरीरी आनन्द पृथिवी से सम्बन्धविच्छेद करके अनन्त आकाश को चूमने के लिए गति, आशा, आकांक्षा और उद्वेग को पाथेय बनाता है।

कवीन्द्र रवीन्द्र में शेली की सी चंचलता तो है, परन्तु वे भक्त सूरदास की तरह—'खंजन नैन सुरंग रसमाते' हैं। कवीन्द्र की कल्पना शेली ही की तरह चंचल एवं गतिमान है, परन्तु वह सांस्कृतिक परिवेश से अवगुंठित है; नहीं तो एकदम अनन्त की ओर उड़ जाती और पृथिवी से अपना सम्बन्धविच्छेद करके आनन्द की भिक्षा माँगती। शेली का 'स्काई-लार्क' पृथिवी की ही वस्तु को आकाश की नीलिमा में बिलीन करना चाहता है, क्योंकि उसमें Gladness और Mad ness की प्रचुरता होने से, पार्थिव शूलों की संवेदना न होने की सम्भावना है।

सत्योपलब्धि का अवलम्बन करके ही सुन्दर आनन्द-घन की भाव-मूर्त्ति का साक्षात्कार होता है। जिसे हमने आँखों से नहीं देखा, किन्तु उसका चिन्तन हमें अच्छा लगता है, अतः उसकी स्निग्ध सुन्दर मूर्ति स्वतः मन में बस जाती है। कवि-कल्पना के आनन्द लोक में जिसका आसन प्रतिष्ठित हुआ है, हमारी चेतन-सत्ता में जिसकी जीवन-साधना की मर्मवाणी, आन्दोलित होती है, उसके भावरूप की ही अनुभूति प्राप्त कर हमारे मन में रासलीला होती रहती है :—

कोउ माई लैहै री गोपालहिं।
दधि को नाम स्याम-सुन्दर-रस बिसरि गयो ब्रजबालहिं॥
मटुकी सीस फिरति ब्रजबीथिनि बोलति वचन रसालहिं।
उफनत तक्र चहूँ दिसि चूवत चित लाग्यो नँदलालहिं॥
हँसति रिसाति बुलावति बरजति देखहु इनकी चालहिं।
सूर स्याम बिनु और न भावै या बिरहिनि बेहालहिं। (सूरदास)

बंग-वैष्णव कवि चण्डीदास की राधा पूर्व राग की सुगम्भीरता की प्रबल आसक्ति को हृदय में धारण करके इस अवस्था को प्राप्त हो गई हैं।

आउ लाइया बेनी फुलाया गाँथनि, देखिये खसाया चूली ।
हासिते वदने चाहे मेघ पाने, कि कहे दु हात तूली ।

महाकवि देव की इसी निरभिमान स्वप्नविह्वल भोग-राग की अरुणिमा ने अनन्य भाव की ध्यानमुग्धता में रस का विरूपण किया है :—

"मूरति जो मनमोहन की मनमोहिनी के थिर ह्वै थिरकी सी,

. . . .

. ...

पूरन प्रीति हिए हिरकी खिरकी खिरकीन फिरै फिरकी-सी ।"

"कान्ह-भई-वृषभानुसुता-भई, प्रीति नई उनई जिय जैसी,
जानै को देव बिकानी सी डोलै लगै गुरु-लोगन देखे अनैसी ।
ज्यों ज्यों सखी बहरावति बातनि, त्यों-त्यों बकै वह बावरी ऐसी ।
'राधिका प्यारी हमारी सौं तू कहि, कालि्ह की बंसी बजाई मैं कैसी' ॥"

श्री राधा का प्रेम-भावित मन, श्री चैतन्यदेव की आराधना में आवेग भरा आरतीगान ज्योतिर्मय पथरेखा बनकर मुखरित हुआ है:—

भावे भरल हेन तनु अनुपम रे, अहनिश निज रसे भोर ।
सघन युगल प्रेम जले झर झर रे, भुज तूली हरि हरि बोल ।
नाचत गौर किशोर मोर पहुँ रे, अभिनव नव द्वीप चाँद ॥

(गोविन्ददास)

कवियों ने आवेगमय व्याकुलता के साथ जिस रूप को मानसिक ध्यान-जगत् में वरण किया है, मर्मलोक की भावसाधना में जिस रूप-सज्जा की प्रशस्ति रचना रात-दिन की है, उसी साधना का सत्यरूप कवि के छन्दपथ से आविर्भूत हुआ है ।

इस भावलोक के सत्य-पथ का अनुगमन करके विश्वकवि रवीन्द्रनाथ के काव्यजगत् में 'मानससुन्दरी' एवं 'उर्वशी' की मूर्त्तियाँ जाग उठी हैं । सम्पूर्ण वसुन्धरा के रूप-रस-गन्ध के प्रवाह में जो वैचित्र्यपूर्ण अनुभूति जाग उठी है, उसी का प्रकाश मय रूप है 'मानस-सुन्दरी' । जन्म-जन्मान्तर

की वेदना एव वासना से युक्त भाव-साधना ही कवि रवीन्द्र के काव्यालोक मे नारी-प्रतिमा के रूप मे मूर्तिमान हुई हैः—

"मुक्तवेणी विवसने-विकशित विश्व वासनार
अरविन्द माझ खाने पाद पद्म रेखेछो तोमार
अति लघुभार।"

अतः सौन्दर्य के पाद-पद्म मे कविहृदय की सत्य-अनुभूति की अञ्जलि प्रत्येक युग में झर पड़ी है।

"मृणाल परशे रोमांच अंकुरि ओठे मर्मान्त हरषे।"

भावजगत् के स्वाभाविक सौन्दर्यबोध की स्वच्छता मे उस रूप का जितना अपरूप उद्‌भासन होता है, उतना ही विश्व की सौन्दर्य-लक्ष्मी के साथ मिलकर काव्यलक्ष्मी के रूप में कवि की आत्मा प्रेम तथा सत्य बोध की अभिषेक-क्रिया सम्पन्न करती है। रवीन्द्रसाहित्य में इसी भाव का क्रमिक उन्मेष हुआ है। अतः वे जन-गण मन अधिनायक कवि हैं, स्रष्टा हैं, ऋषि है एव भक्तराज हैं।

इस संसार में हमारा जैसा दृष्टिकोण बना होता है, वैसा ही दिखाई देता है, क्योंकि इसके पीछे दृष्टिशक्ति काम करती है। फलतः लोगों की दृष्टि का एक दूसरे से पृथक् होना स्वाभाविक है। कभी-कभी लोग अपनी ज्ञान-विदग्धता को केवल बहिरग तक सीमित रखते हैं। अतः अन्तरग की मीमाशा करने में वे अनर्थ करते हैं। महाकवि तुलसीदास के भरत और शेक्सपियर के हेमलेट क्रमशः मानवमन की प्रतीति एवं प्रीति तथा स्थायी भाव एव भावनाग्रन्थियाँ है। अत एव प्रकृति की गोद मे विकसित होने वाले सब सौन्दर्य का हम अवलोकन करते हैं, किन्तु उसका किसलय से अवगुंठित सौन्दर्यसम्भारका अपरूपत्व देखने के लिए हमें अपनी आन्तरिक चेतना एवं अनुभूति को जाग्रत करना होता है। कवि भाषा की ओर विशेष ध्यान नहीं देता क्योंकि उसकी भाषा तो भाव होते हैं और भावानुभूति ही भाषारूप मे लिपिबद्ध हो जाती है। अत एव यदि कहीं भाषा शिथिल हो जाय तो कवि को लाञ्छित करना सहृदयता न होगी,

वरन् कवि की रस-सृष्टि को समझने में बहुत बड़ी बाधा अवश्य उपस्थित होगी। जब तक कवि के प्रति आत्मीय भाव नहीं बनता, तब तक कवि की अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन नहीं हो सकता। इस अन्तर्दृष्टि के जागरण के द्वारा ही हमारे मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की दृष्टि-शक्ति जाग उठती है, जिसके अन्तर्गत ससार का निगूढ़तम सत्य गृहीत होता है। आन्तरिक आनन्द के आस्वादन के साथ इस दृष्टि का घनिष्ठ सम्बन्ध है, एव इस दृष्टि को ही साहित्य-दृष्टि कहते हैं। रसमाधुर्य की गोपन लीला से यह दृष्टि परिपूर्ण है। आत्मजागृति की आनन्दचेतना से तथा सौन्दर्यानुभूति की आवेश-मुग्धता से मर्मस्थल में जो दृष्टि प्रविष्ट हो जाती है, वस्तुतः वही सार्थक साहित्य-दृष्टि है।

यह साहित्य दृष्टि एक विशेष प्रकार की प्रेरणा द्वारा ही जाग्रत होती है। आकाशव्यापी मौनता के परिवेश के अन्तर्गत जिस प्रकार नीरवता से जाग उठती है ज्योत्स्ना की शुभ्रता —

आमरा बेंधेछि काशेर गुच्छ, आमरा गेंथेछि शेफालिमाला।
नवीन धानेर मंजरी दिये, साजिये ए नेछि डाला।
एसो गो शारद लक्ष्मी, तोमार शुभ्र मेघेर रथे।
एसो निर्मल नील पथे एसो धौत श्यामल
आलो-झलो मलो वन गिरि-पर्वते।
एसो मुकुटे परिया श्वेत शतदल
शीतल शरीर-ढाला। (गीताञ्जलि)

उपर्युक्त भाव-सत्य के आधार पर हम कह सकते हैं कि विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने मानस-चैतन्य का नित्यरूप विभिन्न ऋतुओं में अपनी मनन-शीलता के द्वारा भावगगा के वक्ष पर अभिसिंचित किया है। इस ध्यान-मग्नता के पीछे निशब्द स्वप्न-सचार की तरह भावाकाश में प्रेरणा का रस सकेत स्थित है। जन-गण मन अधिनायक कवि रवीन्द्रनाथ विश्व-सृष्टि के मर्म-गहन में लीला-माधुर्य की प्रतिष्ठा करते हैं वे रसमर्मज्ञ स्रष्टा हैं, उन्हें सब समय अपनी सृष्टि को आलोकित करने के लिए प्राण-प्रदीप की शिखा

को जाज्वल्यमान रखना पड़ा है। फलतः इस गभीरतम दर्शन तथा जीवनानुभूति की दृढता से नर-नारियों के मानस-रहस्य का ग्रन्थिबन्धन खुल जाता है और इससे सत्य का प्रतिभास होता है। सौन्दर्य की तीर्थयात्रा नदी के उत्स-प्रवाह से कल्लोल-ध्वनि करती हुई असंख्य तरंग-मालाओं के साथ सागर से मिलकर शान्त नहीं होती, वरन् राकाशशि से सम्मिलित होने के लिए विपुल आवेग का प्रदर्शन करती है। अतः इस प्रेरणामय सृष्टि के अधिनायक रवीन्द्रनाथ को लोक के अन्तर्गत अपरूप रूप-माधुर्य को प्रबुद्ध करने वाला भाव-राज्य का सम्राट् कहना समीचीन है। उनके समक्ष गोपनीय सौन्दर्य, अपनी वास्तविक सौन्दर्य-विभूति से पृथिवी के नरनारियों के हृदयगत वेदना उल्लास मे निगूढ़ रागिनी एवं नूतन झंकार बन कर प्राणों की वीणा पर मुखरित हुआ है। एक अज्ञात आनन्द की निर्झर-धारा में विश्व के प्राण सतरण करने लगते हैं; और प्राणों का यही अनुभव नूतन छन्द, नूतन सृष्टि की गम्भीरतम वाणी तथा गोपनीय मर्म का रहस्य बन कर एक ओर बोधि-दृष्टि और दूसरी ओर दिव्य दृष्टि के साथ समन्वय करता है। भाव-जगत् के अन्तर्गत सत्य का साक्षात्कार होता है। इसी को साहित्य-सृष्टि के प्रश्रय से विश्व-कवि रवीन्द्रनाथ ने महाकवि कालिदास के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' तथा 'कुमार सम्भवम्' महाकाव्य में प्राप्त किया है। मोह के अन्तर्गत जिस सार्थकता की उपलब्धि नहीं होती, उसी की प्राप्ति मंगल के द्वारा सार्थकतर परिणति में होती है। 'धर्म' और 'काम' के ध्रुवत्व मे सार्थकतर सौन्दर्य आत्म-प्रकाश करता है। इसके अतिरिक्त धर्म के कल्याणबन्धन में ही प्रेम का शान्त एवं संयत मङ्गल रूप सम्बद्ध रहता है। बन्धन और बन्धन-मोचन के अन्तर्गत भारतवर्ष की सतत साधना का जो समन्वय-विषयक भाव है, दोनों मे यातायात का जो पथ है, आदान-प्रदान का जो घनिष्ठ सम्बन्ध है; रवीन्द्रनाथ ने उसी सत्य का कालिदास के शिल्प में अवलोकन किया है।

प्रेम और सौन्दर्य के साथ गम्भीर सम्बन्ध है और यही जन-गण-मन के मननधर्मी शिल्प कौशल का लक्ष्य होता है। कवि चिर आकाङ्क्षित अपरूप-रूपिणी का आनन्द पूर्वक अभिनन्दन करता है। दूसरे ही क्षण वह प्रत्यक्ष

विराजमान उदार सुषमा की विश्वमयी कान्ति में हृदय को भर कर जितना विश्व को प्यार करता है, उतना ही धरणी के धूलि-कणों में लुठित मानव और मानवी को। इस प्रकार रवीन्द्रनाथ की अन्तर्दृष्टि विश्व के प्राणों में समाविष्ट होकर सत्य और सौन्दर्य का साक्षात्कार करती है।

फलतः रवीन्द्रकाव्य में क्षणभंगुर मानव-जीवन एक अभिनव, शाश्वत आत्मा के सिंहासन पर अधिरूढ़ हुआ है। रवीन्द्रनाथ ने मानव-जीवन को हम लोगों की तरह खण्ड-खण्ड करके नहीं देखा है। उनकी दृष्टि अखण्ड एवं सर्वात्मक है। इसी लिए उनके समीप मानव-जीवन की सार्थकता गूढ़तम, गम्भीरतम एवं महानतम है। केवल मानव-जीवन ही नहीं—मनुष्य स्वयं उनके काव्य में अपूर्व महिमा से उद्भासित हुआ है। उसकी दीनता, नश्वरता एवं असम्पूर्णता पूर्ण की उपलब्धि के लिए उन्मुख है। रवीन्द्रनाथ की तरह मानव का—जनता-जनार्दन का, इतना बड़ा पुजारी मिलना मुश्किल है। उनका प्रेम—मानव प्रेम, और भी व्यापक है। वे जातिधर्म, देशकाल तथा सम्प्रदाय निर्विशेष प्रेम तथा प्रीति का अर्घ्यदान करते हैं; उनका प्रेम केवल सर्वहारा, अकिंचन तक ही सीमित नहीं है बल्कि सर्वकालीन, सर्वदेशीय, सर्वसम्प्रदाय के मनुष्य के लिए उन्मुक्त है। अतः वे जन-गण-मन अधिनायक कवि हैं:—

> एसो हे आर्य, एसो अनार्य हिन्दू मुसलमान,
> एसो एसो आज तुमि इंगरेज, एसो एसो खृष्टान।
> एसो ब्राह्मण शुचि करि मन धरो हाथ सबाकार,
> एसो हे पतित, होक् अपनीत सब अपमान भार।



जयदेव की 'राधा'

तथा

रवीन्द्रनाथ की उर्वशी

वैष्णव काव्य की राधा और रवीन्द्र काव्य की उर्वशी मे विश्व का सार-भूत सौन्दर्य मूर्त हो उठा है। सौन्दर्य का त्याग करने से जीवन गतिहीन हो जाता है। गतिहीन जीवन मे राधा और उर्वशी की सी प्रतिच्छवियाँ काव्य को अनुपम रूप में नहीं प्राप्त हो सकतीं। समाज के सुसंस्कृत रूप का परिचय प्राप्त करने के लिए काव्य, कला और शिल्प का विकास देखा जाता है। जिस देश मे इन कलाओं का विकास नहीं होता, उसे सुसंस्कृत कहने मे लोगों को सदेह होता है। काव्य, कला-संगीत एव शिल्पकला के निर्माण के पीछे मानव की सत्य भावना और चिरन्तन चिन्तना विद्यमान रहती है। इसी लिए सत्काव्य को प्रशस्त जीवन की प्रतिच्छवि कहा जाता है।

विश्व के मस्तक पर चिरन्तनत्व का राजटीका अङ्कित करके यदि कुछ बच रहता है, वह सत्य है; और आन्तरिक भावना मे जिस निगूढतम सत्य का अवधारण होता है, उसे भावसत्य कहते हैं। जयदेव की राधा मे इन सत्यों की पूर्णतः अभिव्यञ्जना हुई है। जो सुगधित फूल प्रस्फुटित होकर हमारी दृष्टि को अपने रूप-रस-गन्ध से आकृष्ट कर लेता है, उसकी प्रतिच्छवि मानस-पटल पर अङ्कित हो जाती है। उस छवि के साथ रूप-रस गन्ध की

भी प्रतिभाएँ सम्बद्ध होकर सर्वाधिक मनोहारिणी सुषमा का सर्जन करती हैं। प्रकृति का चिरयुवा कवि वर्ड्सवर्थ 'डफोडिल्स' की छवि में आत्म-विभोर हो गया था। उनका नर्तन, रूप-रस गन्ध का उन्मद आन्दोलन प्राणों में प्रतिक्षण मदिर सौन्दर्य के साथ अन्तरगता स्थापित करता है।

For oft when on my couch I lie
In vacant or in pensive mood,
They flash upon thet inward eye
Which is the bliss of solitude,
And then my heart with pleasure fills.
And dances with the daffodils.

अगणित पुष्प-राशि की सौन्दर्य-लक्ष्मी अन्तरलोक में इसी सुरभित ऐश्वर्य की प्रतिष्ठा करती है। कवि की स्मृति में सुरभिसत्ता की प्राणमयता भावसत्य बन जाती है।

यदि सत्य निस्तरग समुद्रकी वारिधारा है, तो भाव-सत्य है उस समुद्र के वक्षस्थल की मणि-मुक्ता। सत्य प्राण-लोक का होता है और भाव सत्य अन्तर-जगत् की सत्ता होती है। फलतः अनुभूतिमय मानस-चेतना मे रस-आनन्द की वह लीला-माधुरी ही भाव की सत्ता है

अनुभूति के अन्तर्गत भावसत्य की मर्मध्वनि वाणी रूप में प्रकट होती है। इसी ध्वनि का प्रश्रय पाकर छन्दबद्ध हृदय की गति कवि का भाव लोक बनती है। यहीं अपरूप का ध्यान होता है और मानसिक रसके आस्वादन की मधुरपटभूमिका तैयार होती है। प्रेम-प्रीति और आसक्ति की स्वप्निल कामना लेकर यह जीवन-सत्य हमारे मर्म-लोक में कभी नीड़ बनाता है तो कभी प्रासाद, यह भावलोक ही वस्तुत. जीवन-बोध की प्रतिष्ठा भूमि है। सत्य के शाश्वत प्रकाश मे ही सुन्दर का अभिषेकोत्सव होता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने इसी लिए पौराणिक नटी उर्वशी की मुक्तकण्ठ से स्तुति की है। गुरुदेव की सत्योपलब्धि भावलोक में सौन्दर्य की लक्ष्मी

बन गई है और जयदेव की राधा में सत्य की निराभरण आसक्ति सम्भोग की अनुभूति का स्वरूप बन गई है। अतएव बृहत्तर जीवन-सत्य रस-साधना के माध्यम से अपना प्रकाश प्रस्फुटित ही नहीं, वरन् चतुर्दिक निर्माण करता है। अन्तर-मिलन की भाव-साधना में कवि के छन्द बद्ध संगीत के द्वारा इस सत्य की उपलब्धि होती है :—

> "वदसि यदि किंचिदपि दन्तरुचिकौमुदी
> हरति दरतिमिरमतिघोरम्।
> स्फुरदधरसीधवे तव वदन-चन्द्रमा
> रोचयतु लोचनचकोरम्।
> प्रिये चारुशीले ! मुञ्च मयि मानमनिदानम्॥
> सपदि मदनानलो दहति मम मानसं
> देहि मुखकमलमधुपानम्॥"

अर्थात् "हे ! राधे, जब तुम कुछ भी बोलती हो तब तुम्हारे दाँतों की चाँदनी मेरे भवरूपी अतिघोर अन्धकार का विनाश कर देती है। जब तुम्हारी वदन-चन्द्र-उच्छलित अधर-सुधा का पान करने के लिए मेरे नयन-चकोर अत्यन्त पिपासित हो गये हैं।

प्रिये, चारुशीले ! (मेरे प्रति) अकारण मान का परित्याग करो, जब से तुमने मान किया है, तभी से मेरा चित्त मदनानल से दग्ध हो रहा है।"

युग युगान्तर से सौन्दर्य की वन्दना होती चली आई है। हमारे देश की पौराणिक कल्पना में उर्वशी स्वर्गीय छन्द एव नृत्य की परिपूर्ण मूर्ति तथा सौन्दर्य का आदर्श है। सभी देवता उसकी वन्दना करते हैं। वह देवराज इन्द्र की प्रियतमा है। पश्चिमी देशों के कवियों ने भी सौन्दर्य की मीमांसा की है। जैसे शेली Intellcotuau beauty का उन्मेष करता है और जान कीट्स—"beanty is truth, truth beauty." का चित्रण। परन्तु आदर्श सौन्दर्य की स्तुति करने के लिए कवि रवीन्द्रनाथ ने

पुराण से काल्पनिक नटी उर्वशी की अवतारणा की है। जयदेव की राधा 'सत्य, शिव एव सुन्दरम्' का प्रतीक ही नहीं है, वरन् उनकी समष्टि हैं। सत्य किसी भी वस्तु का चरम रूप होता है। चरम रूप में गति होती है। यह गति चञ्चलता तथा विलास-विभ्रम के रूप में दिखाई देती है। परन्तु चरम-रूप की गति काव्य के अन्तर्गत रस-छन्द में उद्भूत होती है। सगीत की स्वर लहरी के साथ चरण-विन्यास का अपरूप नृत्य, एव कर-युगल की भाव-मुद्रायें चिरकाल तक देह के अन्तर्गत देहातीत, खण्ड के अन्तर्गत अखण्ड एव सीमा के अन्तर्गत असीम का साक्षात्कार कराती हैं। Sir Edwin Arnold साहब ने 'गीत गोविन्दम्' का अनुवाद छन्दबद्ध सुललित आंग्ल-भाषा में किया है। वे भावप्रवणता से श्री जयदेव की सौन्दर्य-विषयक अनुभूति को आत्मसात् करके राधा का अपने काव्य की भूमिका में परिचय देते हैं:—

"Radha, the spirit of intellectual and moral beauty...' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने जिस सौन्दर्य-लक्ष्मी 'विजयिनी' एव 'उर्वशी' की विजय-घोषणा की है, उसी सौन्दर्य-लक्ष्मी को महाकवि गेटे ने Eternal woman कहकर अभिनन्दन किया है। कवीन्द्र रवीन्द्र उर्वशी का स्तव गान करते हैं। और जयदेव राधा के अधिरूढ महाभाव का दिव्योन्माद।

कवि सर एडविन अर्नोल्ड में मानसिक और नैतिक सौन्दर्य को ग्रहण करने का अद्भुत क्षमता है। उन्होंने 'गीतगोविन्दम्' की आध्यात्मिक और मानसिक सौन्दर्य की सम्भोग-लिप्सा को पग-पग पर रस आनन्द की तीर्थ-भूमि बनाई है—

"Radha is supreme in beauty, with a loveliness which is at once celestial, and yet enshrined in earthly mould. Her charms lift the mind to heavenly contemqlations, and the God of love, Kama, borrows his best weapons from them."

अर्थात् "राधा मनोज्ञ कमनीयता के साथ सौन्दर्य में सर्वोत्कृष्ट है। यह स्वर्गीय सौन्दर्य पार्थिव-तीर्थ में स्नेह एवं भक्ति से प्रतिष्ठित है। राधा की मोहिनी शोभा आत्मा को स्वर्गीय चिन्तन की ओर उन्मुख करती है; और प्रेम का देवता कामदेव उससे अपने अस्त्र-शस्त्र ऋण के रूप में ग्रहण करता है।"

यही कामदेव इन्द्र का सखा बन कर शंकर के तपोवन में अपने पाँचो बाणों से देवों के देव महादेव से सामना करता है। स्वय इन्द्र भी जिसकी अपार व्यापक शक्ति में विश्वास करता है। अतः अपने ऐश्वर्य की रक्षा के लिए वह उसकी खुशामद करता हुआ कहता है :—

"सर्वं सखे! त्वय्युपपन्नमेतदुभे ममास्त्रे कुलिशं भवांश्च।
वज्रं तपोवीर्यमहत्सु कुण्ठं त्वं सर्वतो गामि च साधकं च॥"

"हे प्रिय कामदेव! वज्र और तुम दोनों ही हमारे हथियार हो, उसमे हमारा वज्र अस्त्र तो तपोबल से प्रबल शत्रु के विषय में बेकाम हो जाता है। किन्तु तुम्हारी गति सर्वत्र अप्रतिहत है, और तुम सब कार्य का सम्पादन कर सकते हो।" इन्द्र का सहायक कामदेव राधा से अस्त्र-शस्त्र उधार लेता है। क्योकि उसे इस धरा धाम में सुन्दरतम परिवेश की सृष्टि करनी है। सुन्दर वातावरण मे सुन्दर मनोभावों का विकास होता है। कामदेव के पञ्च शर हैं, अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमल्लिका तथा नीलोत्पल। कवि जयदेव ने इन प्रसाधनों से यमुना के प्रशस्त सुदूर कूलों के चतुर्दिक,— पथ—तरु-कुञ्जो के अन्तर्गत, विजनकेलि सम्पन्न की है। गीत गोविन्दम् की सुमधुर छन्दोमयी नर्तित कविता हृदय मे चाक्षुष रमणीय सौन्दर्य की प्रतीक्षा का भाव जाग्रत करती है। इस सौन्दर्य के परिवेश मे राधा का सम्मोहित रूप मोहन की प्रबल आसक्ति से भाव-विह्वल दिखाई देता है :—

निन्दति चन्दनमिन्दुकिरणमनुविन्दति खेदमधीरम्।
व्यालनिलयमिलनेन गरलमिव कलयति मलयसमीरम्॥
माधवमनसिज बिशिखभयादिव भावनया त्वयि लीना।
सा विरहे तव दीना॥

आदर्श रमणी का विश्लेषण करने से एक भाग मे Beauty और दूसरे में Goodness अधिष्ठित होती है। इन्हीं दो तत्त्वों के आधार पर कवीन्द्र रवीन्द्र ने विरह-मिलन के परिणय की मदिर-करुण शोभा रश्मियाँ विकीर्ण की हैं। उर्वशी की रचना में कवि केवल पौराणिक आख्यायिका में ही आबद्ध नहीं है, वरन् अनेक काल्पनिक भाव-सत्यों की गम्भीर अनुभूति से प्रेरित होकर चिर पिपासाकुल हुआ है .—

''गोष्ठे यवे सन्ध्या नामे श्रान्त देहे स्वर्णाचल टानि,
तुमि कोनो गृहप्रान्ते नहिं ज्वालो सन्ध्या-दीप-खानि,
द्विधाय जडित पदे कम्प्रवक्षे नम्र नेत्रपाते
स्मित हास्ये नाहि चलो सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्द्धराते।''

कवि रवीन्द्र का कथन है कि उर्वशी किसी की 'गृह-लक्ष्मी' न हो सकी, अतः उपर्युक्त सम्भावनाओं की साध कैसे पूरी हुई होगी? सन्ध्यासमय कुल-वधुयें तुलसी के पौधे के नीचे प्रदीप जलाकर शख बजाती हैं। किन्तु उर्वशी ने किसी 'गृह-प्रान्त' मे 'सन्ध्या दीप' नहीं जलाया। और न वह अपने वरेण्य प्रियतम से अर्धनिशा में धड़कते दिल से दिल मिलाने के लिए आतुर ही हुई। 'उर्वशी' की प्रथम दो पक्तियाँ पूर्व प्रेम की घटना का कुछ थोड़ा आभास देती हैं। मानव के श्रेष्ठ रूप का विकास नारी-देह में हुआ है। रवी-न्द्रनाथ ने इसे उर्वशी की 'आनन्दलोकवासिनी' सुषमा में आविर्भूत किया है। कवि वर्ड्सवर्थ भी सभवतः इसी अनन्त यौवना के सौन्दर्य से अभिभूत होता है—सौन्दर्य लक्ष्मी सगीत-स्रष्टा कवि की प्राणमयी कविता की प्रेरक शक्ति है:—

A perfect woman, nobly planned
To warn, to comfort and command,
And yet a spirit still, and bright
with something of angelic light.

(W. Wordsworth)

किन्तु उर्वशी किसी की कुल-वधू न होकर विश्व की सौन्दर्य-लक्ष्मी है। उर्वशी देवसभा में जिस उल्लास से नृत्य-मग्न हुई थी, उसी उल्लास से कवि रवीन्द्र की कविता भी उल्लसित हुई है:—

> "सुरसभातले यवे नृत्य करो पुलके उल्लसि
> हे विल्लोल-हिल्लोल उर्वशी।
> छन्दे छन्दे नाचि उठे सिन्धु माझे तरंगेर दल,
> शस्यशीर्षे शिहरिया काँपि उठे धरार अंचल,
> तव स्तन-हार हते नभस्तले खसि पड़े तारा,
> अकस्मात् पुरुषेर वक्षोमाझे चित्त आत्महारा
> नाचे रक्त धारा।"

हम किसी की सत्ता को किसी सम्बन्ध से जानते हैं। जो किसी की माँ नहीं, पुत्री नहीं, वधू नहीं, वह फिर है क्या?

> "न ह माता, न ह कन्या, न ह वधू, सुन्दरी रूपसी
> हे नन्दनवासिनी उर्वशी।"

जयदेव की राधा के विषय में यह रहस्य नहीं है। क्योंकि वह प्रत्यक्ष रूप से कृष्ण की अनन्य अनुरागिणी है। सम्भव है यही सत्य उर्वशी के विषय में भी चरितार्थ होता हो। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ मानव के इस अविच्छिन्न सम्बन्ध को उर्वशी की अनुपम शोभा से सम्बद्ध करना चाहते हों अथवा नहीं; क्योंकि यह उनकी प्रशस्ति मात्र है; जिसमें उन्होंने 'उर्वशी' की जीवन-विषयक अनेक सम्भावनायें प्रस्तुत की हैं। फलतः 'हे नन्दनवासिनी उर्वशी' से उर्वशी की शोभा का उपभोक्ता तो प्रकट होता है, परन्तु उसका नामकरण संस्कार कहीं नहीं है। जब कि राधा वन-प्रान्त के पात-पात, तृण-तृण, कण-कण को कृष्णमय बना देती है। प्रेम की यह उत्कट अभिलाषा उर्वशी में थी अवश्य, परन्तु कवि रवीन्द्र ने भावावेश में उसकी प्रेमविह्वलता अपने ऊपर धारण कर ली। जो भावविह्वलता उर्वशी के द्वारा अभिनीत होनी चाहिए, उसका कवि स्वयं अभिनय करता है। यही इस

कविता की विशेषता है। यही भाव-सत्य की अनायत्त कमनीयता चिरन्तन सत्य-बोध के आश्रय से स्वप्निल वासना के सौन्दर्य का साक्षात्कार कराती है:—

"स्वर्गेर उदयाचले मूर्तिमती तुमि हे उपसी,
हे भुवनमोहिनी उर्वशी।
जगतेर अश्रुधारे धौत तव तनुर तनिमा,
त्रिलोकेर हृदिरक्ते आँका तव चरण-शोणिमा,
मुक्त वेणी विवसने, विकशित विश्व वासनार
अरविन्द माझखाने पादपद्म रेखेछो तोमार
अति लघुभार।
अखिल मानसस्वर्गे अनन्तरंगिणी,
हे स्वप्नसगिनी ॥"

उर्वशी की सृष्टिमें रवीन्द्रनाथ का सौन्दर्य राधा की तरह बड़ी सरलता से प्राणों का विषय नहीं बनता, क्योंकि कवि की उर्वर कल्पना उसे प्रलाप करने के लिए तथा विश्वविमोहिनी सौन्दर्य का आदर्श रखने के लिए बाध्य करती है। परन्तु जयदेव की राधा का उद्भ्रान्त प्रेम देख कर हमें कवि जयदेव की भाव-प्रवणता तथा भागवत रति की प्रगल्भ चञ्चलता का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है जिसे प्राण सरलता से सञ्चय करते हैं। कवि की मानसिकता की वासन्ती भावसाधना की ओर आकृष्ट करती है। कवि मानव-मानसकी अभिज्ञता से निविड़तम सत्योपलब्धि करता है :—

पश्यति दिशि दिशि रहसि भवन्तम्
त्वदधरमधुर मधूनि पिबन्तम्
नाथ हरे, जय नाथ हरे, सीदति राधाऽवासगृहे

....

.. ..

मुहुरवलोकित मण्डनलीला ।
मधुरिपुरहमिति भावनशीला ॥

त्वरितमुपैति न कथमभिसारम् ।
हरिरिति वदति सखीमनुवारम् ॥

श्लिष्यति चुम्बति जलधरकल्पम् ।
हरिरुपगत इति तिमिरमनल्पम् ॥

भवति विलम्बिनि विगलितलज्जा ।
विलपति रोदिति वासकसज्जा ॥

कवि जयदेव ने वर्णन किया है कि वसत ऋतु मे वासन्ती-कुसुम-कोमला श्रीराधा वृन्दावन के निभृत प्रदेश मे बड़े यत्न से श्रीकृष्ण का अनुसंधान कर रही हैं। कृष्ण और राधा की अवस्थाओं को एक सखी परस्पर अवगत कराती रहती है। इसी समय वही सखी वृन्दावन की वसंतशोभा का वर्णन करते-करते राधा को कुछ दूर ले जाकर गोपागनाओं से वेष्टित विलासोन्मत्त श्रीकृष्ण को दिखाती है। श्रीराधा ने समझा कि श्रीकृष्ण के समीप जैसे मैं हूँ वैसे ही अन्य गोपियाँ भी हैं। वे श्रीकृष्ण को साधारण भोग में आसक्त देखकर अन्यत्र चली गई और सखी के निकट अपनी अवस्था का वर्णन करने लगीं। कवि जयदेव ने इस (Allegorical) रूपात्मक प्रणय की आसक्ति एव आकाक्षा का प्रणयन बड़ी कुशलता से किया है। इधर श्रीकृष्ण कामना की सारभूत शृखलारूपिणी राधा का ध्यान करते हुए व्रजागनाओं का साथ छोड़ देते है तथा मनोभव के बाण से अनुविद्ध होकर वे इधर-उधर उन्हें ढूँढने लगते हैं:—

"चिन्तयामि तदाननं कुटिलभ्रु रोषभरेण
शोणपद्ममिवोपरि भ्रमताकुलं भ्रमरेण" (गीतगोविन्दम्)

रवीन्द्रनाथ अपनी 'उर्वशी' की स्तुति करते हैं:—

यखनि जागिले विश्वे, यौवने गठिता पूर्ण प्रस्फुटिता ।

. . ..

....

हे अपूर्व शोभना उर्वशी ।।
मुनिगण ध्यान भांडि देय पदे तपस्यार फल
तोमारि कटाक्षघाते त्रिभुवन यौवन चंचल
तोमार मदिर गन्ध अन्ध वायु वहे चारिभिते
मधुमत्त भृङ्ग सम मुग्ध कवि फिरे लुब्ध चिते
उद्दाम संगीते
नूपुर गुंजरि जाओ आकुल अंचला
विद्युत्-चंचला ।।

कवि जयदेव ने बहिरावरण में पल्लवित एव पुष्पित होने वाले सौन्दर्य का चित्रण किया है और कविगुरु रवीन्द्र ने बहिरावरणहीन भीतरी सौन्दर्य को विशेष रूप से देखने की चेष्टा की है। जयदेव कामदेव के अमोघ अस्त्रों से बढकर और किसी अस्त्र-शस्त्र की महत्ता शायद नहीं स्वीकार करते। भौं रूपी धनुष पर स्थापित कटाक्ष रूपी बाण से जितनी मर्म-पीड़ा हो सकती है उतनी और किसी से नहीं। श्याम कुटिल कबरी का भार, रागवान् बिम्बाधर तथा गोलाकार कठोर स्तनमण्डलादि प्राणों को जितना व्यथित कर सकते हैं, उतना शायद द्विधा-जड़ित पदविन्यास, कम्प्रवक्ष, नम्र नेत्रपात का स्पन्दन तथा उषा के उदय की तरह अनवगुंठिता की नग्न कान्ति का रोमाञ्चित विरह-विधुर सगीत नहीं। रवीन्द्रनाथ ने अपनी उर्वशी मे चित्रशैली और सगीतशैली का समन्वय किया है। जयदेव और रवीन्द्रनाथ दोनों चित्र अङ्कित करने में सिद्धहस्त हैं। रूप, रस और गन्ध की अनेकों प्रतिमायें जयदेव की तूलिका ने राधा के प्रश्रय से अकित की हैं। मनाभव के पाँच बाण लोक-विश्रुत हैं। किन्तु जयदेव की सृष्टि में पाँच बाण स्थूल हैं और पाँच बाण सूक्ष्म। पच स्थूल शरों का पहले वर्णन किया जा चुका है। अत-एव पच सूक्ष्म शरों पर विचार करना आवश्यक है। जयदेव की राधा का

चित्र वसन्त की सुषमा में पञ्च स्थूल-शर सुसज्जित करते हैं। बड़ा ही मनोज्ञ वातावरण है। मनोभव की गति अप्रतिहत है। इसका कारण यह है कि उसकी पाँच शक्तियाँ विद्युत् से भी अधिक तीव्रगामिनी हैं। यह शक्ति राधा मे प्रतिष्ठित ही नहीं, वरन् प्रचुर मात्रा मे पुंजीभूत है। कवि जयदेव के गोविन्द ऐसी शक्ति के समक्ष यदि आत्मसमर्पण करते हैं तो इसमे कोई आश्चर्य की बात नहीं होनी चाहिए।

"स्मरगरलखण्डन मम शिरसि मण्डनम्
देहि पदपल्लवमुदारम्!
ज्वलति मयि दारुणो मदनकदनानलो
हरतु तदुपाहितविकारम्
प्रिये चारु शीले!". ..

इन्द्रसभा की नटी उर्वशी के सौन्दर्य में उन्मादन, तापन, शोषण, स्तम्भन एव सम्मोहन-शक्तियाँ है। और यही शक्तियाँ राधा में भी हैं। परन्तु जयदेव ने गीतगोविन्दम् की राधा को रागात्मक प्रेम से विभूषित किया है। और यही रागात्मक प्रेम राधा में अधिरूढ़ महाभाव की चरम सीमा तक पहुँच गया है। जब राधा विरह में अत्यन्त विह्वल एवं उद्भ्रान्त हो जाती हैं तब ऐसी दशा को भावुक-मनीषी सम्मोहन कहते हैं। महाभाव एकदम से दिव्योन्माद मे परिणत नहीं होता, बल्कि इसका क्रमिक उन्मेष होता है। रति, प्रेम से परिपुष्टि प्राप्त करती है और यही महाभाव मे सुविकसित हो जाती है। अनवच्छिन्न मिलन के आनन्द से जो स्फूर्त्ति प्राप्त होती है वही सम्मोहन की अवस्था कहलाती है। राधा की यही निसर्गसिद्ध अवस्था है, और इसी महाभाव की वे एक मात्र अधिष्ठात्री हैं। सर एडविन अर्नाल्ड ने 'गीतगोविन्दम्' की राधा, कृष्ण एव गोपियों को रूपात्मक (Allegory) ढग से प्रदर्शित किया है। यह उदार-भावुक कवि-हृदय की चिन्तना एवं भाव-प्रवणता है। "कृष्ण, काव्य का नायक, मानवात्मा का रूपात्मक (allegoric) प्रदर्शन है। और राधा दैवी-प्रेम और-सौन्दर्य

का मानवी करण हैं। इसके अतिरिक्त गोपियाँ मायावी ससार की मधुर वासनायें हैं।" मानवात्मा (कृष्ण) पार्थिव और दैवी सौन्दर्य की ओर आकृष्ट होती है। सर्वप्रथम कृष्ण गोपियों की ओर आकृष्ट होते हैं और अन्ततो गत्वा स्वर्गीय सौन्दर्य के समक्ष नतमस्तक हो जाते हैं। सम्भवतः राधा का प्रेम 'साध्य शिरोमणि' है। अतः श्रीजयदेव ने राधा के साध्य-प्रेम की प्राप्ति के लिए वेदनामय छलकते आँसुओं को तथा कण्ठ के आर्त्त चीत्कार को विश्वजगत् के प्राणों में प्रतिष्ठित किया है।

नन्दनकानन में जिस इन्द्र ने सौन्दर्य के इन्द्रजाल की रचना की, उसी ने उर्वशी को अपनी सभा की प्रधान नर्त्तकी नियुक्त किया था। इन्द्रसभा से उस सुन्दरी का मन मानव (पुरुरवा) के साथ सम्मिलित होने के लिए चचल हो गया। देवसभा में नृत्य करते-करते अन्यमनस्क हो गई, अतः उसकी ताल का भग हो जाना स्वाभाविक था। इधर स्वर्गीय सुन्दरी के प्रति मानव पुरुरवा का मन उद्भ्रान्त हो गया। पृथुल पृथ्वी का पति होने पर भी पुरुरवा स्वर्गीय उर्वशी के विरह में कातर हो गया। प्रेम की अग्नि-परीक्षा होती है विरह में, इस कथन की सार्थकता को गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और श्रीजयदेव ने भली भाँति समझा है। विश्व के सभी कवियों ने जीवन की दु:ख वेदना की मार्मिक अनुभूति को विश्व-जगत् के चेतनावृन्त में वासना और कामना के पुष्प-स्तबक बनाकर विपुल सुरभि का विस्तार किया है। कवि के काव्य में युग युगान्तर की चिरन्तन प्राणधारा का सगीत प्रेमास्पद के चतुर्दिक रात-दिन गूँजता रहता है। प्रेमास्पद को जन्म भर देखते रहने पर भी उसकी साध मानो अतृप्त ही रहती है :—

> "जनम अवधि हम रूप निहारल
> नयन न तिरपित भेल।" (विद्यापति)

महाकवि कालिदास ने अपने 'विक्रमोर्वशीय' नाटक में इसी सत्य की अभिव्यक्ति की है। उनकी उर्वशी रूपवती होने पर भी रूपातीत अपरूप सुन्दरी है। वह सौन्दर्य-रूपिणी, युवती, शशिकला एव स्थिर यौवना है।

राजा पुरुरवा अब तक सौन्दर्यलक्ष्मी को शरीरिणी देख रहा था, किन्तु वियोगी होने से उसे सारा संसार 'उर्वशीमय' दिखाई देने लगा :—

'नदी भावेनेयं ध्रुवमसहना सा परिणता ।'

अर्थात् 'अवश्यमेव उर्वशी मेरे अपराधों को न सह सकने के कारण नदी रूप में परिणत हो गई है ।' राजा पुरुरवा उद्भ्रान्त से विक्षिप्त होकर हंस से पूछता है :—

'हंस ! प्रयच्छ मे कान्तां गतिरस्यास्त्वया हृता ।'

अर्थात् 'हे हंस ! तू मेरी प्रियतमा को मुझे वापस कर दे; जिसकी सुन्दर गति-भंगिमा तूने चुरा ली है ।'

विश्वकवि रवीन्द्रनाथ प्रेम और करुणा के कवि हैं । वे नारी के अन्तरंग और बहिरंग सौन्दर्य के बड़े ही संवेदनशील पारखी हैं । इसी सौन्दर्य की खोज उन्होंने उर्वशी में की है । यद्यपि उर्वशी में पूर्व-वर्णित पाँच सूक्ष्म तत्त्वों की पूर्ण रूप से अभिव्यञ्जना हुई है, तथापि गुरुदेव ने अपनी भावुकता से उन्हें इंगित करके करुणा की आवेगात्मक आकुलता का विश्वमोहनी रूप प्रस्तुत किया है । इसी भाव-लोक के सत्य-पथ का उन्होंने अपने काव्य जगत् में निरूपण किया है । जन्म जन्मान्तर की रूपसज्जा तथा वेदना-वासनामय भाव-साधना नारीप्रतिमा में प्रतिष्ठित होकर विश्वमोहिनी सौन्दर्य लक्ष्मी की रूपमाधुरी बन गई है । विश्वव्याप्त सौन्दर्य के प्रकाश का सत्य रूप, जिसे कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपनी अनुभूति का विषय बनाया है, उर्वशी के माधुर्यमयी रूप में विकसित हुआ है । विश्वसौन्दर्य की सर्वबन्धन-मुक्त रूप भावना को कवि ने उर्वशी की रूप-कल्पना में उन्मुक्त किया है ।

प्राणियों में स्त्री को सौन्दर्यरूपिणी माना गया है । सम्भवतः वह विधाता की प्रथम सृष्टि है । स्रष्टा सौन्दर्य का विस्तृत रूप एकत्र देखने के लिए नारी-सौन्दर्य की सृष्टि करता है, यह भाव-सत्य की योजना है, इसका प्रयोजन यह है कि विश्व का बिखरा सौन्दर्य 'नारी के रूप' में पूर्णतः स्थित हो जाय :—

'एकस्थ सौन्दर्य-दिदृक्षयैव ।'

अत. मानवात्मा का केन्द्र-विन्दु नारी की मनोहारिणी भाव-भगिमा पर प्रतिष्ठित हो जाता है । श्रीजयदेव ने अपने गोविन्द के मुख से इस तथ्य का प्रकाशन किया है ।

"'कर-कमलेन करोमि चरणमहमागमि तासि विदूरम् ।

. . . .

वदनसुधानिधिगलितममृतमिव रचय वचनमनुकूलम् ॥"

. . . .

तात्पर्य यह है कि नारी-निसर्ग में जो शक्ति-सौन्दर्य है राधा और उर्वशी उसी की प्रतीक हैं । यह शक्ति सौन्दर्य अपने आप मे पूर्ण होकर अपने आपका साध्यशिरोमणि लक्ष्य हैं । परन्तु राधा शब्द का उदयाचल 'राध् साध् , ससिद्धौ' है, अत एव राधा-कृष्ण आज भी पूजास्पद हैं और उर्वशी केवल भावुकों की प्रेयसी मात्र रह गई है । उर्वशी की विल्लोल-हिल्लोल भगिमायें और लाक्षारसरजित चरणों के नूपुरों की रुनुक-झुनुक किस अनन्त में विलीन हो गई ? विश्वकवि रवीन्द्रनाथ का हृदय चिरवियोगी प्राणों की करुण अनुभूति से व्यथित हो जाता है और वे विलाप करते करते रोने लगते हैं :—

"फिरिबे न फिरिबे ना, अस्त गेछे से गौरव शशी,
अस्ताचलवासिनी उर्वशी

. . . .

तबू आशा जेगे आछे प्राणेर क्रन्दने
अयि अबन्धने ॥" (चित्रा)



रूप और यौवन का कवि रवीन्द्र

शैशव मे बालक मूल प्रवृत्ति से नियंत्रित होता है। उसे रंगीन पदार्थ एवं शोर के शब्द आकृष्ट करते हैं। शैशव की कोमल वृत्तियाॅ शनैः शनैः यौवन मे विकसित होकर उद्दाम भावनाओं में आन्दोलित होती हैं। फलतः किशोर रूप और शब्द से आकर्षित होता है। यही रूप और शब्द भविष्यत् जीवन मे सौन्दर्य और संगीत मे परिणत हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि किशोर शैशव के स्वात्म-प्रेम से तृत होकर वत्स-प्रेम की ओर प्रवृत्त होता है। रवीन्द्र-काव्य मे प्रेम की भावना बहुत-कुछ इसी क्रम से विकसित हुई है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की दृष्टिभगी सुन्दर थी, अत एव उन्होंने जो कुछ देखा, उमसे सुन्दर का आविष्कार किया। संसार की प्रत्येक वस्तु एक दूसरे से पृथक् है। रूप, रस, गन्ध तथा स्पर्श के कारण सांसारिक वस्तुओं मे पार्थक्य एवं वैचित्र्य है; यह यदि न होता तो संसार वैचित्र्यविहीन दिखाई देता और ऐसे संसार मे वास करना अरुचिकर प्रतीत होता। अतः आनन्द के लिए संसार का वैचित्र्यपूर्ण होना प्रकृति ने सम्भवतः आवश्यक समझा है। जगत् की विविध वस्तुओं के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं हो सकता, क्योंकि मानव के सोचने के ढंग अपने-अपने परिवेश के अनुसार होते हैं। जगत् की वस्तुओ मे विचित्रता है और यह मानव का परिवेश है, अतः मतों का वैचित्र्य होना आवश्यक है। दर्शन के साथ सम्बद्ध नीति तथा धर्म के संबन्ध मे भावुकों एव मनीषियों की परिभाषायें पृथक्-पृथक् हैं। इस मतभेद की सृष्टि मुख्यतः तीन कारणों पर निर्भर है। प्रथम, रुचि-वैचित्र्य; द्वितीय, कालभेद; तथा तृतीय, देशभेद। प्रत्येक देश के लोगों के जीवन की अनुभूति तथा

जगत् के प्रति उनकी दृष्टिभंगी भिन्न भिन्न है। इसलिए सबकी समस्या एक नहीं है, सौन्दर्यानुभूति एक नहीं, सौन्दर्य का मूल्यांकन एक नहीं, तो फिर सबको समान रूप से सौन्दर्य-बोध कैसे हो सकता है। विषयवस्तु के पार्थक्य के कारण विवेचना की भङ्गी एक जैसी नहीं हो पाती। किसी का जगत् ईश्वर-सृष्ट है, किसी के मतानुसार जगत् परमाणु से उद्भूत हुआ है; किसी के कथनानुसार आत्मा अविनश्वर है और किसी के अनुसार आत्मा है ही नहीं। इन सब व्यक्तिगत विश्वासों एव पूर्व-प्रतिज्ञाओं के अनुसार चिन्तन की धारायें पृथक् हो जाती हैं।

तो फिर इस बहुरूपी जगत् की वस्तुओं का क्या कोई साधारण रूप नहीं है? जिसका आश्रय लेकर इसके सम्बन्ध में आलोचना की जाय? वैचित्र्य के अन्तर्गत भी साधारण साम्य होता है। मानव-मन की मूल प्रवृत्तियों की भी एक जैसी सत्ता होती है। आधुनिक मनोविज्ञान ने इन प्रवृत्तियों को पर्याप्त प्रमाणित किया है। वन के वृक्ष-फल-फूल एक-दूसरे से भिन्न हैं, फिर भी वृक्षमात्र एक जाति के अन्तर्गत हैं एव उनके जातिगत सामान्य गुण सब में विद्यमान हैं। इसी प्रकार गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की वैचित्र्यपूर्ण कविताओं में सौन्दर्य और उल्लास की समष्टि और संगति विद्यमान है। उनकी सूक्ष्मदेही कवितायें प्रकृति-प्रीति का लीला-रस हैं।

विश्व के नाना रूपों में असीम चिरसुन्दर की सत्ता प्रकाशमान है। विश्व के नाना प्रकार के वर्ण, गन्ध, स्पर्श एवं रस के अन्तर्गत 'आनन्दरूप' एव 'अमृतरूप' की सुन्दरता विराजमान है। इस असीम शक्ति का साक्षात्कार ज्ञान और भक्ति से सम्भव है। गीता ने इसे ईश्वर की संज्ञा दी है—'ईश्वरः सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति'; यह भावुक के साधन-पथ की रागात्मक-वृत्ति है। भाव प्रेम धर्म की सम्पदा है। इसे जगत् की सम्पूर्ण वस्तुओं में सौन्दर्य-लक्ष्मी के रूप में प्रतिष्ठित करना भावुक की भावानुभूति की अभिव्यक्ति है। ज्ञानमार्गी का कथन है कि ब्रह्म के अतिरिक्त दूसरी कोई सत्ता नहीं है—मैं भी नहीं, तुम भी नहीं, कोई जीव वा वस्तु भी नहीं; केवल एक

मात्र ब्रह्म है। फिर भी हम देखते हैं, मैं हूँ, तुम हो, अगणित जीव एवं वस्तुएँ हैं; जो सिर्फ माया का खेल है। निरन्तर आत्मानुशीलन के द्वारा माया का आवरण छिन्न हो जाने पर ब्रह्मोपलब्धि होती है और साधक भावावेश मे कहने लगता है "सोऽहम्"। इस असीम-शक्ति-सम्पन्न सत्ता को उपनिषद् मे "रसो वै सः" कहा गया है। कार्लाइल (Carlyle) ने इसका भावुकता से स्पष्टीकरण किया है:—

'The universe is the visible garment of the invisible God .'

कविगुरु रवीन्द्र ने अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में सुन्दर को आत्म-सात करके उसे काव्य मे उन्मीलित किया है। इसी लिए उनके काव्य की मौलिक दृष्टि है सौन्दर्य, जिसे कवि ने अपनी गीताञ्जलि में लिपिबद्ध किया है:—

"अन्तर मम विकशित करो अन्तर तर हे।
निर्मल करो उज्ज्वल करो सुन्दर करो हे।"

रवीन्द्र के काव्य मे यह सौन्दर्य कहीं साकार सीमाबद्ध है, तो कहीं निराकार अनन्त। साकार और निराकार सौन्दर्य के उन्मीलन में द्वन्द्व और विरोध का आभास हो सकता है, परन्तु रवीन्द्र के काव्य में इन्द्रियगम्य साकार सौन्दर्य की विषयानुभूति अतीन्द्रिय निराकार एवं निरुपाधिक रस स्वरूप में समन्वित हुई है। कवि की यह सृष्टि आनन्द एव उल्लासपूर्ण है। उसके भाव का विकास अनन्त एव असीम है, फलतः उसकी परिधि ब्रह्म की सीमा का अन्तरिन्द्रिय जगत् में आलिंगन करती है। जिस प्रकार दार्शनिक का ब्रह्म एक ही समय मे निर्गुण और सगुण है, निराकार एव साकार है, उसी प्रकार कविगुरु रवीन्द्र का सौन्दर्य एक ही समय मे निर्गुण एवं सगुण है।

उनके काव्य मे मानव प्रकृति की सभी अवस्थायें विद्यमान हैं। उन्हें जीवन में उल्लास और आनन्द अभीष्ट था, अत एव उन्होंने रूप और यौवन

के जो चित्र प्रस्तुत किये, अनुपम रहे। इस सौन्दर्य-सत्य को जो नहीं समझते, वे रवीन्द्रकाव्यको पीड़ित का प्रलाप मात्र समझते हैं। गुरुदेव के काव्य के प्रशसक असख्य हैं, परन्तु उनकी वाणी का मार्मिक सगीत सुनने की क्षमता इने गिने लोगों तक ही सीमित है, क्योंकि उनके काव्य का भाव, चिन्तन एव प्रकाश की भगी असामान्य है। अतः अध्येता के धैर्य की मर्यादा का भग हो जाना साधारण सी बात है। ससार में भावुक एवं चिन्तक अत्यल्प होते हैं। रूप और नाद से पशु भी आकृष्ट होते हैं, फिर मानव का आकर्षित होना सामान्य प्रवृत्ति है। परन्तु भावरस की पिपासा से आत्मविभोर हो जाना भावुकता का चरमोत्कर्ष है। सहृदय मानव की वाणी प्राणों में प्रेम का आन्दोलन करती है और उसकी आँखों के आसू निखिल विश्व को युग युगान्तर तक प्रेम-रस से निमग्न। कविगुरु रवीन्द्र की तरह भावुक कवि एव सहृदय मनीषी किसी देश और जाति को बड़े भाग्य से मिलते हैं। यह कहने में अत्युक्ति-न होगी कि गुरुदेव के मर्म मर्म में भारतीयता है और वर्त्तमान काल में रवीन्द्रनाथ की तरह का अन्य भारतीय कवि दृष्टिगोचर होना असम्भव है। उनके काव्य की चेतना वैदिक एव लौकिक सस्कृत वाङ्मय के साथ सगोत्रता रखती है।

मध्ययुग के अनेक साधकों की वाणी के साथ गुरुदेव के आत्मीय भाव का साम्य है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उनकी कविता पुरातन सस्कृत कविता के ऊपर निर्भर है, प्रत्युत् 'शिवो भूत्वा शिव यजेत्' की उपासना के लिए पुरातन काव्य को अभिनव-जीवन दान दिया है। शिवमय न होने से शिव की उपासना नहीं की जा सकती। व्रज का पथ—वृन्दावन के केलि निकुज-मग—नित्य चलने के पथ हैं। प्रेम-पथ पर चलने के लिए असीम श्रद्धा एव विश्वास का सबल चाहिए। भक्त इसी लिए वृन्दावन के गली-कूचों में चिरकाल से परिभ्रमण करता आ रहा है। भगवान् को भी प्रेम-महत्व दिखाने के लिए केलिनिकुञ्ज-मग में पग-पग पर प्रयाग की प्रतिष्ठा करनी पड़ रही है। अतएव श्रुति का वचन है—

इस चिरन्तन लीला के लिए भक्त और भगवान् की उपस्थिति अनिवार्य है। सूक्ष्म को जानने के लिए स्थूल का प्रदर्शन आवश्यक है। भगवान् को जानने के लिए भक्त के अस्तित्व को अङ्गीकार करना पड़ता है। दया एक **Abstract** वस्तु है, उसको जानने के लिए **Concrete** दयालु को जानना पड़ता है। निर्गुण ब्रह्म को जानने के लिए सगुण स्वरूप की आराधना वाञ्छनीय है। रवीन्द्र के काव्य की सूक्ष्म सुन्दरता से परिचय प्राप्त करने से पूर्व उनके कान्ता-प्रेम के प्रति निष्ठा होनी चाहिए, क्योंकि वे आनन्द भगवान् के पुजारी हैं। पृथिवी के रंग-बिरंगे फूलों को संचित करके और उन्हे भक्तिचन्दन के छींटों से पावन करके देवता के समक्ष निवेदन किया है—

रूप सागरे डूब दियेछि
अरूप रतन आशा करि।

× × × ×

अथवा,

सीमार माझे असीम तुमि
बाजाओ आपन सुर।
आमार मध्ये तोमार प्रकाश
ताइ एतो मधुर। (गीताञ्जलि)

सौन्दर्य को रवीन्द्रनाथ ने कभी भी विच्छिन्न भाव से नहीं देखा। सम्पूर्ण सर्यामित सौन्दर्य के मूल मे अनादि, अनन्त एव असीम सौन्दर्य विद्यमान है। यह उनके भाव-राज्य की सम्पत्ति है। असीम सीमा मे बद्ध होकर अपने रूप को निरन्तर प्रकाशित करता है। असीम रूप मर्यादा की परिधि मे अपने सौन्दर्य का शतदल की तरह विकास करके उसके सौरभ से दिग-दिगन्त को व्याप्त कर देता है। अतः काव्य की सृष्टि नित्य नूतन एवं नित्य-रञ्जक है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की काव्य-सृष्टि के मूल मे सौन्दर्य-भावना ही विशेष रूप से विद्यमान है। यह सौन्दर्य अपने आप मे पूर्ण है। सौन्दर्य-

सृष्टि उनके जीवन की चिर संगिनी है। अखिल विश्व उनकी सौन्दर्यानुभूति से ओतप्रोत है। अतः उनकी रूपसृष्टि में सुसंगति एवं समन्वय है। जहाँ सामञ्जस्य का अभाव होता है, वहीं कुत्सित रूप दिखाई पड़ता है। इसी सामञ्जस्य के अन्तर्गत सौन्दर्य का मूल अर्थात् छन्द प्राप्त होता है। छन्द और नृत्य के समन्वय से जिस भाव का उद्रेक होता है वही रूप का सूक्ष्म स्वरूप है। छन्द और नृत्य के सम्मिलन से जिस भाव का उन्मीलन होता है, वही 'सौन्दर्य' है। जिस मदन का रूप वैभव रति के नयनों को मुग्ध कर देता है वही इस सौन्दर्य के निकट प्रणत हो जाता है। मूलप्रवृत्ति रति मन को अधिकृत करती है फलत. मनसिज की शहनाई पतले स्वरों से प्रतिध्वनित होने लगती है। बसंत का मत्त कुतूहली रूप अपने यौवन की सुगन्ध बिखेरने लगता है। रूप और यौवन मानो विश्व को मन्त्रमुग्ध करने को कटिबद्ध हुए हों :—

फेलो गो वसन फेलो—घुचाओ अंचल।
परो शुधू सौन्दर्येर नग्न आवरण॥
सुर-बालिकार वेश किरण-वसन।
परिपूर्ण तनुखानि विकच कोमल॥
जीवनेर यौवनेर लावण्येर मेला। (विवसना)

अयि सुन्दरि! वस्त्र को फेंक दो फेंक दो—अचल को त्याग दो। सिर्फ सौन्दर्य का नग्न आवरण पहनो। सुरबालिका का वेश, किरणों का वसन, परिपूर्ण सुन्दर शरीर-कमल की तरह विकसित, वस्तुत. जीवन, यौवन और लावण्य का मेला है।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने जाग्रत जीवन में जाग्रत यौवन का पूर्णरूपेण मूल्यांकन किया है। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास की तरह उन्होंने अपनी उन्मेष-शालिनी प्रतिभा से विश्व को विस्मय-विमुग्ध कर दिया है। वे एक ओर व्यास, वाल्मीकि और कालिदास की अविच्छिन्न परम्परा को नवीन युग की नवीन समस्याओं से सुसम्बद्ध करते हैं तथा दूसरी ओर भावी सन्तति के लिए

आर्ष-मार्ग का प्रदर्शन एव निदर्शन करते हैं। वे एक ओर सामरवध्वनित तपोवन के ऋषि हैं तो दूसरी ओर कोलाहलमुखरा महानगरी के पथ-प्रदर्शक पथिक। उन्होंने जीवन को सर्वभाव से वरण किया है। अतः उनके काव्य मे प्रिया और पृथिवी की अगणित अनुरञ्जिनी प्रतिमायें प्राणमयी हो उठी हैं। जिस प्रकार शिल्पी सौन्दर्य को अपनी तूलिका से चित्रित करते हैं और उसमें मनोभावों की मुद्रायें स्वतः मुस्कराने लगती हैं ठीक उसी प्रकार रवीन्द्रनाथ की साधना का सूक्ष्म सौन्दर्य चित्रा, पूर्णिमा, उवशी और विजयिनी में मूर्त्त होकर प्राणवान् एवं प्राणप्रिय हो गया है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि शिल्पी और कवि में साम्य की स्थापना अभीष्ट है, प्रत्युत सूक्ष्म सौन्दर्य को मूर्त्तिमान करना उतना ही कष्टसाध्य व्यापार है जितना एक शिल्पी का शिलाखण्ड से सुस्मित प्रतिमा बनाना। अतः गुरुदेव की कला, प्राप्त-यौवना की आडम्बर-शून्य साधना है। सौन्दर्य की इस आडम्बर-शून्यता को बहुत से लोग नहीं समझ पाते और न समझने की चेष्टा करते हैं। लोग भूतल की उर्वशी का रूप देखकर उसका उपभोग करने को अधीर हो जाते हैं, क्योंकि सुन्दर चीजें जादू डाल देती हैं जिससे विवेक भोगलिप्साविमूढ़ हो जाता है। लोग आँखों को आँखों से तो देखते है परन्तु आँखों के पानी को क्यो नहीं देखते? लोग रूप-यौवन का उपभोग करना चाहते हैं और करते हैं, परन्तु प्राणों का करुण क्रन्दन सुनने के लिए कितने रसिक-दरिया दिल, तत्पर है?

रूप और यौवन की आँखों में निराकार ब्रह्म रसराजरूप मे विराजमान रहता है। ब्रह्म को रसस्वरूप होने के लिए सरस भूमि पर अवतरित होना पड़ता है। काव्य-कला और शिल्प के अन्तर्गत कवि एवं शिल्पी केवल नूतनता की ही सृष्टि नहीं करते वरन् कल्पना की सहायता से कुछ ऐसी चीजों का निर्माण करते हैं, जिसकी तरह का शायद कहीं कुछ है, किन्तु ठीक वैसा ही प्रकृति मे कहीं नहीं है। अतः शिल्प एवं काव्य की सृष्टि केवल नूतनता की ही सृष्टि नहीं, वरन् सुन्दरता की भी सृष्टि है—

सागर ने मानो लक्षशत्त फणों को अवनत करके उसी पदप्रान्त में आत्मनिवेदन किया है। तुम कुन्दफूल की तरह शुभ्र हो, तुम्हारी कान्ति नग्न है, अर्थात् शिशु की तरह सरल और पवित्र है—यहाँ तक कि देवराज इन्द्र भी तुम्हारी वन्दना करते रहते हैं। तुम्हारा सौन्दर्य अनिन्दनीय है।'

जब उर्वशी पृथिवी पर आविर्भूत हुई तब वे पूर्ण यौवना थीं, पूर्ण प्रस्फुटित पुष्प की तरह वे विकसित थीं। अनन्तयौवना उर्वशी क्या कभी यौवन की पूर्वावस्था में अर्थात् शैशवावस्था में न रही होगी? फूल को जैसे फूलरूप में प्रस्फुटित होने से पूर्व मुकुल-रूप में आना होता है, वैसे उर्वशी को भी यौवनविकसिता होने से पूर्व क्या बालिका की अवस्था में आना नहीं हुआ? उसका वयःक्रम क्या सामान्य रूप-सी से भिन्न था? कवि के मानस मे इस प्रकार के सम्भावित प्रश्न उठने लगे और वह भावावेश में उर्वशी के प्राणों का सगीत सुनने लगा। अन्धकार, निर्जन, समुद्रतल में किस के घर में बैठकर उर्वशी ने शैशवकाल में मणि-मुक्ताओं से क्रीडायें की थीं? वे मणिक्यदीप्ति से उद्भासित कक्ष में, समुद्र की तरगों का कल्लोल-सगीत, सुनते-सुनते प्रवाल के पालक पर किस की गोद में सो जाती थी? कवि ने इन पक्तियों में यह जानने की चेष्टा की है कि क्या अन्य सासारिक वस्तुओं की तरह सौन्दर्य का भी विवर्त्तन से विकास होता है? यदि हाँ, तो कविकल्पनापरिणत रूप यौवन का सम्भाव्य चित्र प्रस्तुत करने में निमग्न है। सौन्दर्य पूर्ण विकसित एव प्रस्फुटित होने से पूर्व अन्धकार में आच्छादित रहता है। अत एव सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष-उर्वशी, छन्द की रानी बनकर शैशवावस्था मे समुद्रका सगीतमयी कल्लोल सुनते-सुनते समाधिस्थ हो जाती हैं। रवीन्द्रनाथ की भाव-धारा सौन्दर्य एव सगीत की स्तुति करते करते तद्रूप हो गई है। तात्पर्य यह है कि लोकोत्तर सौन्दर्य का उपभोग देवतात्मा ही करती है। परन्तु उर्वशी रूप और यौवन में एक प्रकार का नैसर्गिक सगीत है। जिसको सुनने की क्षमता केवल भावुक में ही होती है। गुरुदेव ने रूप और यौवन के स्थूल स्वरूप से सम्पूर्ण विश्व को

अभिभूत कर दिया है। युग युगान्तर से सारा संसार तुम्हारे प्रेयसी रूप की पूजा करता आया है। कितने ही ऋषियों और मुनियों ने तुम्हारे सौन्दर्य से सम्मोहित होकर तुम्हारे चरणों की आराधना की है। त्रिभुवन के चचल यौवन में तुम्हारे नयन की भंगिमा देखी जा सकती है। तुम्हारे अग की सुगन्ध मादकतापूर्ण है। सरस समीर उसी मदिर आवेग को चारों ओर फैला देता है। तुम्हारे सौन्दर्य का मधु-पान करके मुग्धचित्त कवि भ्रमर की तरह दिग् दिगन्त को संगीत से भर देता है:—

मधुमत्त भृंग सम मुग्ध कवि फिरे लुब्ध चिते उद्दाम संगीते।
नूपुर गुंजरि जाओ आकुल अंचला विद्युच्चंचला ।।

रूप और यौवन संगीतस्रष्टा कवि के प्राणों को संगीतमय कर देते हैं। सौन्दर्य में छन्द और नृत्य अन्तर्निहित भाव से विद्यमान रहते हैं। इसी लिए कविगुरु रवीन्द्र ने उर्वशी को नृत्यपरायण रूप मे कल्पित किया है। नृत्यरता उर्वशी के स्तनहार से नभस्थल की तारकावली सुशोभित हुई हैं। इस अतुलनीय सौन्दर्य के दृश्य से पुरुष का चित्त विभ्रमित हो जाता है और देह की रक्तधारा मानो नाचने लगती है। दिग् दिगन्त के विभिन्न रंगों के मध्य नृत्यरता उर्वशी का अंगविन्यास रति-भावव्यञ्जक है। कवि की कल्पना से उर्वशी की मेखला टूट जाती है। इससे असंवृत अगराग की सुरभि विकीर्ण होने लगती है। प्लेटो ने सौन्दर्य की सार्वभौमसत्ता का विशदीकरण किया है:—

Of all the 'ideas' Beauty has the most universal and strongest appeal.

अन्ततो गत्वा गुरुदेव रवीन्द्र खेद प्रकट करते हैं कि इस कृत्रिम संसार मे अकृत्रिम रूप और यौवन हमे शायद अब देखने को न मिलेंगे, कवि का मन इसी लिए रुदन करता है। भावुक एवं सहृदय का गौरव चन्द्र अस्तमग्न है। इसी लिए वसंत के उल्लास में इस रोदसी पर विरह-जनित उदासी छाई हुई है। पूर्णिमा की रात्रि मे जब सभी आनन्दमग्न

हैं—उर्वशी की विरहजनित स्मृति मानो व्यथित वक्षीरव से रुला देती है। किन्तु प्राणों के क्रन्दन में कवि की आशा जाग रही है।

तबु आशा जेगे थाके ....

रवीन्द्रनाथ की कविता की प्रमुख विशेषता है 'आशा की वाणी', जिसे कवि क्रन्दन में भी निरन्तर अनुभव करता है। गुरुदेव ने रूप और यौवन की परिधि में अनन्त सौन्दर्य की प्रतिष्ठा की है। उन्होंने उर्वशी के माध्यम से सर्व-हृदय-व्यापी पार्थिव-भोग-क्षुधा को अतीन्द्रिय आनन्दलोक में समाविष्ट कर दिया है। फलतः उनके दृष्टिकोण का सुन्दर, सत्य एव शिवरूप से विश्वोन्मुख होना स्वाभाविक है।

आदर्श सौन्दर्य का स्वरूप जो पुरुष उपलब्ध करता है, वही चरम और परम सौन्दर्य का प्रकाश एव प्रत्येक भाव में तथा जल-स्थल-पवन-आकाश में अवलोकन करता है। नृत्यनिमग्न उर्वशी के विषय में कवि का कथन है कि हे! उर्वशी, पृथिवी तुम्हारे रूप में मुग्ध है। ससार को तुमने अपने ही सौन्दर्य के अश से मोहिनीरूप प्रदान किया है—स्वर्ग के उदयाचल मे तुम मूर्तिमती उषा हो। तुम्हारा देहसौन्दर्य जगत् की अश्रुधारा में स्नात होने से ही इतना पवित्र एवं माधुर्य-पूर्ण हुआ है। तुम्हारे चरणों की लालिमा त्रिलोकी के हृदय के खून से रँगी हुई है। तुम्हारी केशराशि उन्मुक्त और वसन स्खलित हैं। तुम्हारे कमलवत् चरणसौन्दर्यपिपासु रसिक जन के मानस में स्थित हैं। पृथिवीवासी मानवों के मानसस्वर्ग में तुम अनत लीला-रंग फैलाती हुई घूमती हो- भावुक स्वप्नावस्था में तुम्हारे सहवास के सुख का उपभोग करता है। जगत् की अश्रुधारा से तन की तनिमा धौत है। तात्पर्य यह है कि स्नान से अग की मलिनता दूर हो जाती है और शरीर के अग प्रत्यंग का सौन्दर्य बढ जाता है। उर्वशी गुरुदेव रवीन्द्र की कल्पनाप्रसूत श्रेष्ठ सौन्दर्य की नारी-रूप है। उन्होंने जिस जलधारा से अपने अंग प्रत्यग का प्रक्षालन किया है, वह सामान्य जल नहीं है—वह तो ससार की अश्रुधारा है।

ससार के बड़े कवियों ने चरम आनन्द एव सुन्दर को करुणा से पृथक् नहीं किया वरन् करुणा में ही असीम सौन्दर्य एव अनन्त आनन्द की उपलब्धि की है। पश्चिम का विख्यात कवि कीट्स कहता है:—

"The music, yearning like a God in pain."
(The eve of St. Agnes, Keats)

"...In the very temple of delight veil'd
Melancholy has her sovran shrine."
(Ode on Melancholy, Keats)

शेली के स्काई लार्क की पक्तियाँ तो सर्वाधिक प्रसिद्ध ही हैं—

our sincerest laughter
with some pain is fraught,
our sweetest songs are those that tell of saddest thought.
(**Skylark**, shelley)

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने 'उर्वशी' मे सौन्दर्य एव आनन्द की उपलब्धि की है, परन्तु उनकी अन्तिम पक्तियाँ हृदय को रुला देती हैं। सम्भवतः आनन्द और सौन्दर्य करुणा-रस-निषिक्त होते हैं। गुरुदेव की 'उर्वशी' भावुक की आत्मा को आनन्द, सौन्दर्य एव सगीत से अभिभूत करके सदा के लिए विदा हो जाती है। कविहृदय विरह की लंबी साँस लेकर विलाप करता हुआ फूट-फूटकर रोने लगता है॥—

रूप और यौवन का सौन्दर्य सर्वविजयिनी होता है। इसका कारण यह है कि जो सुन्दर है वही सत्य और शिव है। सुन्दर के सन्निकट आत्मार्पण करने में पराजय की ग्लानि नहीं होती, बल्कि इस पराजय से हमारा गौरव बढता है। सुन्दर की प्राप्ति करने वाला धन्य है। अरूप विश्वदेवता ने रूप के अन्तर्गत नाना प्रकार के भावों को चित्रित किया है। रूप और यौवन के प्राणों मे समाविष्ट होकर जो सौन्दर्य का साक्षात्कार करता है, वही सौन्दर्य-

देवता का निरीक्षण करने में समर्थ होता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के अनुसार आदर्श रमणी को दो भागों में विभक्त करके देखने से एक भाग में The beautiful, एक भाग में the good दिखाई देता है। बाणभट्ट की महाश्वेता और विजयिनी के साथ पर्याप्त साम्य है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की विजयिनी महाश्वेता की तरह सर्वकामनाओं को विजय करती है। महाश्वेता सर्वविजयिनी होकर अच्छोद सरोवर में स्नान करती है। कामदेव उसके समीप आकर स्वय पराभव स्वीकार करते हैं। महाश्वेता के चरण-कमलों में कामदेव की श्रद्धाञ्जलि सौन्दर्य की सर्वविजयिनी प्रतिष्ठा है। यह तो केवल गुरुदेव की प्राप्त प्रेरणा है, वस्तुतः कविता की चेतना आनन्दोपलब्धि एव सत्यानुभूति के सौन्दर्य से मण्डित है। रूप और यौवन का अपूर्व नग्न सौन्दर्य विजयिनी कविता की विशेषता है। निराभरण सौन्दर्य में 'विजयिनी' की सुन्दरता सकल रिपु-जयी है।'

रवीन्द्रनाथ ने इस कविता में स्नानरत नारी के नग्न सौन्दर्य का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया है। विजयिनी के नग्न सौन्दर्य-वर्णन में कवि का उद्देश्य महान् है। वह इस सौन्दर्य को इन्द्रिय से इन्द्रियातीत एव भोग से भोगातीत सौन्दर्य में समन्वित करता है। पवित्र एव महत्, विराट् एव सुन्दर सज्जावर्जित होते हैं। इस कविता को पढकर सामान्य जन कहीं रवीन्द्रनाथ को समझने में गलती न करें इस लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता है। हमारे कल्याण के देवता महादेव दिगम्बर हैं। अत एव आदर्श सौन्दर्य के भीतर किसी प्रकार का सकोच, कुठा अथवा लज्जा नहीं होती। जिस प्रकार शिशु और फूल नग्न रह कर अपने रूप की पवित्रता का प्रसार करते हैं उसी प्रकार गुरुदेव की विजयिनी और उर्वशी अपने रूप और यौवन की सुगन्ध को बिखेरती चलती हैं। इस प्रकार की सृष्टि उन्मुक्त, बन्धनहीन एव उदात्त होती है। महाकवियों का ससार सौन्दर्य-मण्डित होता है। वहाँ लज्जा निर्लज्ज होकर अपने रूप और यौवन का प्रदर्शन करती है। सौन्दर्य को लज्जा से अलकृत किया जाता है, फिर लज्जा के निर्लज्ज होने का क्या अभिप्राय हो सकता है?

इस विषय मे श्री जयदेव के गीतगोविन्द की पंक्तियाँ पर्याप्त हैं। कृष्ण;राधा के निकट आत्म समर्पण करते हैं:—

स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि पदपल्लवमुदारम्।

अथवा, 'घटय जघनमपिधानम्'

श्री जयदेव और रवीन्द्रनाथ Sensual अर्थात् कामुक कवि नहीं हैं। उन्होंने धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष के प्रश्रय में काव्य का सर्जन किया है। भारतीय सस्कृति मे त्रिवर्ग और पुरुषार्थचतुष्टय का बड़ा महत्त्व है। समस्त भारतीय काव्य-कला और शिल्प-सगीत उपर्युक्त पुरुषार्थों का अनुगमन करता है। मानव-जीवन की मिथुन-अनुभूति मे धर्म, अर्थ और काम की सत्ता अनिवार्य रूप से रहती है। इन्द्रियों की अनुभूति को इन्द्रियातीत करना श्री जयदेव और रवीन्द्रनाथ की काव्यगत विशेषता है। फलतः गुरुदेव और जयदेव की वाणी का मर्म न समझने वाले भोगी भी इन्द्रियज प्रणाली में प्रवृत्त होकर आनन्द का अनुभव करते हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अपनी उर्वशी के सम्बन्ध में कहा है—

'कुन्द शुभ्र, नग्न कान्ति'

कल्याणी नारी के निकट मदन का पराभव सौन्दर्य का पारमार्थिक तत्त्व है। काव्य मे सौन्दर्य श्रेष्ठ वस्तु है, इसे काव्य-जगत् का परमार्थ कहना अधिक उपयुक्त है। अत एव पारमार्थिक तत्त्व के निकट आत्म-समर्पण करने में जीवन की सार्थकता है। कामदेव के भस्मीभूत होने के उपरात जिस सौन्दर्य की कामना एवं प्रतिष्ठा होती है, उसे काव्य का पारमार्थिक तत्त्व कहा जाता है। महाकवि कालिदास के शकर पार्वती के समक्ष प्रकट होकर कहते हैं:—

अद्यप्रभृत्यनवतांगि तवास्मि दासः
क्रीतः तपोभिः ....।

हे! पार्वती, आज से मैं तुम्हारी तपस्या से खरीदा हुआ तुम्हारा दास हूँ। कालिदास मदनदहन के उपरांत जिस सौन्दर्य का संस्थापन करते हैं, वह

है 'प्रियेषु सौभाग्य-फला हि चारुता'। इस परिभाषा का फल शंकर के क्रीत दास होने में परिपक्व हुआ है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने अपनी गीताञ्जलि में प्रकारान्तर से पारमार्थित तत्त्व की ओर निर्देश किया है.—

वासना यखन विपुल धूलाय
अन्ध करिया अबोधे भुलाय,
ओ हे! पवित्र, ओ हे! अनिद्र,
रुद्र आलोके एसो।

'जब वासना विपुल धूल से अन्धा बनाकर अज्ञान के द्वारा मुझे भुला रही हो, तब ओ हे! पवित्र, हे! अनिद्र, तुम रुद्र आलोक से आओ।'

'विजयिनी' मे सम्पूर्ण सौन्दर्य से युक्त नारी समस्त वासना एव कामना को जीत कर अपने चित्त की शुद्धि के लिए सरोवर में स्नान करती है उसका शरीर नग्न एव निराभरण है। मत्स्यपुराण में अच्छोदसरसी का वर्णन किया गया है। इसके अलावा 'अच्छ' शब्द का अर्थ स्वच्छ एव परिष्कार होता है। अतः शुद्ध जल में सुन्दरी की सुषमा अत्यधिक सौन्दर्यमण्डित हो गई है। सुन्दरी का नग्नवेष, जल की चचल लहरों में थिरक रहा है। रूप और यौवन की शोभा सरोवर मे आन्दोलित हो रही है। मधुर वसत अपनी अपरूप साजसज्जा से चतुर्दिक अवनि अबर मे अपनी आसक्ति का आवेश फैला रहा है। दिग्-दिगन्त में प्रेममय विह्वलता का प्रसार है। पवन झड़े पत्तों पर प्रवाहित होकर मानो प्रेम का प्रलाप करके चला जा रहा है। वन की गोद में मध्याह्न काल का प्रकाश म्लान हो रहा है। वन का सम्पूर्ण परिवेश कहीं भी तीव्र एव प्रखर नहीं है। चारों ओर शात एवं धीर भाव विद्यमान है। समीर शनैः शनै. वह रहा है:—

इसी लिए चम्पक की शाखा शान्त एव अकपित है। इसी चम्पक की शाखा पर कपोतदम्पति बैठकर 'घन चचु चुबन' में विभोर हैं। व

चुम्बन के समय बीच-बीच में नीरवता को भग करके विह्वलभाव से कूजन करने लगते हैं।

अच्छोद सरोवर के श्वेत शिलाखण्ड पर रमणी के परित्यक्त वसन पड़े हुए है। ये सुन्दर अंग से पृथक् होकर मानो श्रीहीन हो गए हैं। जिन अंगों से ये च्युत हुए हैं। उनका सौरभ इनमें व्याप्त हैं। वस्त्रों की उत्तप्त सुरभि मे सुन्दरी का अंगराग समाया हुआ है। आयु के समाप्त होने पर देह मे जैसे कुछ काल के लिए सामान्य उत्ताप अवशिष्ट रह जाता है वैसा ही इन वस्त्रों की अवस्था है। कटितट से आभूषण पृथक् कर दिया गया है; उपेक्षित आभूषण मिट्टी में पड़ा हुआ अपने नीरव अपमान का अनुभव कर रहा है। नूपुर भी पड़े हुए है। वक्षावरण स्वर्गीय सौन्दर्य से युक्त था, परन्तु वह अब सुषमामण्डित कोमल कुचों से विच्युत होकर कठिन पाषाण पर पड़ा-पड़ा लोट रहा है। जगत् के किसी भी साहित्य में इस प्रकार से स्तनों का वर्णन नहीं किया गया।

नारी-स्तन का ऐसा अपरूप वर्णन विश्वसाहित्य मे अद्वितीय है। देह-सौन्दर्य का चरम विकास इन युगल कुचों से प्रकाशित होता है। कवि रवीन्द्रनाथ ने इन्हें 'युगल स्वर्ग' माना है, अत एव इनका सुषमामण्डित होना स्वाभाविक है। शिशु के लिए मातृ-स्तन जीवनदायक होते हैं। इनके चित्रण मे कविगुरु रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का सर्वाङ्गीण विकास एवं चूडान्त प्रकाश दर्शनीय है।

असीम सब समय ससीम सौन्दर्य के साथ सम्मिलित होना चाहता है। नील नीर असीम का प्रतीक है, सम्भवतः इसी लिए वह असीम सौन्दर्य के प्रतीक रमणी से आलिंगन कर रहा है:—

'विह्वल गभीर बुकभरा आलिंगनराशि'

इस तत्त्व को कवि ने अपने काव्य में कई जगह चित्रित किया है। सरोवर के नीले जल में सुन्दरी आवक्ष डूबी हुई है, वह एक शुभ्र राजहंस को अपने वक्षस्थल से लगा कर उसका आदर करती है, कोमल नग्न

बाहुपाश में उसे बाँध कर और उसकी लम्बी ग्रीवा को अपने कन्धे पर स्थापित करके उससे प्रेम की अति मधुर वाणी में वार्त्तालाप करती है। वह अपना कोमल कपोल हस की पीठ पर बड़ी सुकुमारता से फेरती है। इस संस्पर्श से वह आत्मविभोर हो रही है। कविगुरु रवीन्द्र का कितना कोमल एव सौन्दर्यमय चित्र है। सम्पूर्ण दृश्य में एकमात्र पवित्र भाव ही चित्रित हुआ है। इस प्रकार के चित्रों का उन्मीलन करना कवि की साधना की अभिव्यक्ति है, जिसे उसने सौन्दर्य के अन्तर्गत उपलब्ध किया है। इस अपरूप सौन्दर्य की स्थापना के लिए कवि ने उपयुक्त परिवेश चुना है। जल-स्थल एव नभोमण्डल में सुमधुर संगीत की स्वरलहरी प्रतिध्वनित हो रही है। प्रकाश और सघन पल्लव के अन्धकार में, हस और रमणी की क्रीड़ा मे, पत्रों की मर्मरध्वनि में, विहगों के कलकूजन में एक अनुपम स्वप्नमय सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। ऋतुरतिराज वसत का शृगार प्राकृतिक सौन्दर्य का रूप प्रदर्शित करता है।

कामदेव वकुल की घनी छाया को त्याग कर मृदु मन्द हास्य के साथ उठ खड़ा होता है। यही उपयुक्त समय है—मदन काम के आवेग से नारी-हृदय को अब जर्जरित करेगा। किन्तु सम्मुख आकर वे सहसा ठिठक गए। वे निर्निमेष निश्चल नयनों से कुछ क्षण तक देखते रहे, तदुपरात रमणी के पद प्रात में घुटने टेक कर बैठ गए। इस प्रकार मदन विजयिनी के निकट आत्मार्पण करता है।

'. . निरखि मदनपाने
चाहिला सुन्दरी शान्त प्रसन्न वयाने।'

यह कथन सौन्दर्य की जयघोषणा करता है।
एवं रूप और यौवन के अन्तर्गत पारमार्थिक तत्त्व की प्रतिष्ठा॥

सौन्दर्य का पूर्ण विकास यौवन में होता है। यौवन हृदयों की रागात्मक एव भावात्मक मूल प्रवृत्तियों को आकृष्ट करने के लिए रूप की साज सज्जा करता है। शारीरिक विकास के साथ ही मानसिक विकास

होता है। बहिरिन्द्रिय के साथ ही साथ अन्तरिन्द्रिय के विकास की संभावना है, परन्तु वैचित्र्यपूर्ण जगत् मे इस कथन के अपवाद भी कम नहीं मिलते। कवि इन भावों को अपने काव्य मे लिपिबद्ध करता है। जिस कवि मे मानव-मन की कोमल अनुभूतियों को जितनी ही कोमलता से व्यक्त करने की शब्दशक्ति एवं अर्थ सम्पत्ति होगी, उस कवि का काव्य उतना ही प्राणवान् होगा। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का शब्दचयन मानव-मन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों का बड़ी मार्मिकता से उन्मीलन करता है। जिन कवियों की दृष्टि केवल बहिरिन्द्रिय वर्णन तक ही सीमित रहती है उनकी शब्दयोजना में शब्दालकारों की प्रचुरता रहती है। शब्दों की गति मे सगीतात्मकता है। जिस शब्दयोजना मे सगीत की गति होती है उसमें छन्द-नृत्य का विधान नहीं करना पड़ता वरन् छन्द-नृत्य स्वतः उपस्थित होते हैं। जब भाषा भावों की अनुगामिनी होती है तब उसमें एक स्वाभाविक प्रवाह अपने आप आ जाता है। इसके विपरीत बहुत से कवियों की शब्द-योजना केवल सगीत की स्वर-लहरी के लिए होती है, अथवा शब्दों के चमत्कार के लिए। वर्तमान युग के कवियों की मुक्तक कविताओं मे कतिपय शब्द ढूँढ ढूँढ कर बैठाये जाते हैं; कवि-कर्म का यह कष्टसाध्य व्यापार प्रससनीय है, परन्तु भावों की अभिव्यक्ति एवं सगीत की सगीत के लिए जिन शब्दों की योजना हो, वह विनिश्चित अर्थ एव उद्देश्य की आराधिका हो। शब्दों का सगीत उद्देश्यसाधक होता है। यद्यपि काव्य और संगीत पृथक् पृथक् शास्त्र हैं, परन्तु शब्द स्वर उभयनिष्ठ होते हैं। काव्य और सगीत—छन्द-नृत्य, की सगति करने वाले शब्द प्राणप्रद होने चाहिए। जब शब्द-शक्ति और स्वर-साधना संयुक्त होकर किसी स्थायीभाव का सम्पादन करती है तब कवि-कर्म उत्कृष्ट कवित्व का प्रणयन करता है।

कवि की अन्तरिन्द्रिय ज्यों ज्यों अपनी अनुभूति की प्रतिष्ठा बहिर्जगत् मे करती है त्यों त्यों अर्थालंकार का निरूपण होता है। किन्तु अर्थालकार में केवल शब्दवैचित्र्य एव अर्थवैचित्र्य ही काव्य नहीं, प्रत्युत रस का उद्रेक

एव सचार है। कतिपय कवियो की भाषा व्याकरण का अनुशासन नहीं मानती फिर भी उनका काव्यरस जनता को आप्लावित कर देता है।

काव्य सुन्दर और आनन्द की सृष्टि है। इसमें शब्दों की रचना शिथिल होने पर भी यदि वह रसनिषिक्त है, तो काव्य उत्कृष्ट ही होगा। कुछ काव्य को पाण्डित्य का वैदग्ध समझते हैं, परन्तु काव्यसौन्दर्य एव आनन्द की अनुभूतियों की रसमयी अभिव्यक्ति है, जिसकी अभिव्यञ्जना के लिए कविहृदय अधीर हो जाता है। अन्तरिन्द्रिय की प्रेरणा कवि को सौन्दर्य एव आनन्द की सृष्टि के लिए बाध्य करती है। श्रेष्ठ कवियों का काव्य किसी न किसी रस का परिपाक है। यह रसाधिक्य किसी न किसी भाव को आत्मसात् कर लेता है फलत' कवित्व का उदात्तभाव निखिल विश्व को अपना बना कर सार्वात्म्य भाव की प्रतिष्ठा करता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का काव्य उपर्युक्त तथ्यों की पूर्ण अभिव्यक्ति है। उनके काव्य में शब्द अर्थ-एव रस का पूर्णरूपेण परिपाक हुआ है। अत एव उनके काव्य का बहिरग एव अन्तरग रूप और यौवन के सौन्दर्य से सुशोभित है। जिन पाठकों मे शब्द-अर्थ एव भाव के मूल्याकन की एव कवि की तरह उन्हें अनुभव करने की क्षमता है, वस्तुतः वही कवि के असीम सौन्दर्य एव अनन्त यौवन का उपभोग कर सकते हैं। वर्तमान काल में कवि की इस आनन्दरूपिणी सृष्टि के साथ सगोत्रता नहीं हो पाती, इसका कारण यह है कि कवि की रचना के सूक्ष्म सौन्दर्य में अवगाहन करने की क्षमता एव धैर्य सामान्य जनों में कम मिलता है। कवित्व मानव का सद्गुण है। मानवता का चूडान्त उत्कर्ष कवित्व से ही नापा जाता है। जिस देश में कवित्व पल्लवित नहीं हुआ उसे प्रेतपुरी कहना अनुचित न होगा, क्योंकि कवि का काव्य, मानव की सस्कृति, अनुभूति एव अभिव्यक्ति का द्योतक होता है। काव्य के ही द्वारा मानवता के विकास की कल्पना की जाती है। जिस मानवजाति मे जितनी ही अधिक आनन्दानुभूति एव सत्योपलब्धि होती है, उतनी ही वह श्रेष्ठ समझी जाती है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का काव्य भारत की अन्त-

रात्मा के सत्त्व, औदार्य एवं सौन्दर्य का प्रतिनिधित्व करता है। फलतः यह विश्वास होना स्वाभाविक है कि गुरुदेव का काव्य देश काल एवं परिस्थितियों के विधिनिषेधों का उल्लंघन करके सौन्दर्य और आनन्द से निखिल संसृति को ओत-प्रोत करता रहेगा। गुरुदेव के काव्य का अध्ययन करने से भावुक को भाव, रसिक को रस एवं भक्त को रागानुगा भक्ति की उपलब्धि होना ध्रुव सत्य है। यह रूप और यौवन की शोभा जाग्रत जीवन की सुषमा में प्रिया और पृथिवी के कोमल स्वर से प्रियतम का आवाहन करती है:—

ओगो, सुन्दर वल्लभ, कान्त
तव गम्भीर आह्वान कारे (गीताञ्जलि)



व्यासकबीर और रवीन्द्र की भागवत रति

देवतात्मा नगाधिराज का उदार गाम्भीर्य एवं सामरवध्वनित भारत वर्ष के युगप्रवर्तक भक्तों एवं साधकों का जयघोष, पुण्यजलवाहिनी गङ्गा, यमुना, सरस्वती एवं कावेरी की अगणित लोललहरियों में आन्दोलित हो रहा है। जनगण की प्रगति क्रान्ति का प्रतीक भारतवर्ष है। भारतवर्ष के क्रान्तिद्रष्टा मनीषियों ने आनन्द और सत्य की प्राप्ति के लिए विप्लव का वेणुवादन किया है। सतीत्व, वीरत्व, कवित्व एवं पाण्डित्य का पूर्णरूपेण विकास भारतीय तपोवन में हुआ है। व्यास और वाल्मीकि का कवित्व, कुमारिलभट्ट और शंकराचार्य का पाण्डित्य विश्वमानव के प्राणों में स्पर्धा एवं लोकहितैषणा का भाव जाग्रत करता है।

देशप्रेमिक साधकों की वाणी में तथा समाजहितैषी भक्तों की भक्ति में व्याकुलता, वैराग्य एवं आर्ति की भावना प्रजा के अनुरञ्जन के ही लिए नहीं हुई, प्रत्युत् मानवचित्त में ज्ञानात्मक एवं भावात्मक विप्लव की प्रतिष्ठा के लिए। ज्ञानात्मक एवं भावात्मक विप्लव मानवचित्त को क्रियात्मक विप्लव के लिए प्रेरित करता है। विप्लव का अर्थ है आमूल परिवर्तन। आमूल परि-वर्तन के लिए भक्तों एवं साधकों ने अपनी स्वरसाधना एवं भक्तिभावना को विभिन्न रूपों में प्रतिफलित किया है। भक्तों की साधना और भक्ति, दुराचार के प्रति सदाचार का अभियान है, मृण्मय प्राणों में चिन्मय भाव की जागृति का आह्वान है, म्रियमाण मानव के प्राणों में नवजीवन की चेतना का सञ्चालन है, पाषाण-हृदय में आनन्द और उल्लास का रसमयी प्रवाह है। अत एव भगवान् व्यास ने भावुकों एवं रसिकों का आवाहन किया है:—

'पिवत भागवतं रसमालयं मुहुर हो रसिक भुवि भावुकता ।'

'हे ! भावुक, रसिकगण,' धरातल पर भागवतरसालय अवतीर्ण हुआ है, अत एव तुम लोग इसके अमृतरस का पुनः पुनः पान करो ।' व्यास की क्रान्ति रसनिषिक्त होने से ध्वंसात्मक नहीं, रचनात्मक है। वर्तमान युग की क्रान्तियों का संहारात्मक रूप देखकर जनता का विचार बन गया है कि क्रान्ति के अन्तर्गत ध्वंस और संहार का होना अनिवार्य है, परन्तु क्रान्ति और विप्लव सहारात्मक ही हों, ऐसा कोई आवश्यक नहीं है। विचारों, भावों एव स्वर के छन्द नृत्य में विप्लव होता है। फलतः मानवजीवन-विप्लव का नित्य आयोजन है, एव निरन्तर आत्मानुशीलन का उपक्रम इसी मे मानव-जीवन की सार्थकता है।

लौकिक एवं अलौकिक मानव-जीवन का काव्य अभ्युदय एव निःश्रेयस का उद्बोधक है। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों ने परमात्मा को 'रस' माना है और आत्मा को 'कविर्मनीषी'। अत एव कवि रूपी आत्मा का रस रूपी परमात्मा से अविच्छिन्न संबन्ध है। इसी आधार पर व्यास-कबीर और रवीन्द्र की भागवतरति प्रतिष्ठित है। फलतः व्यास रास-पञ्चाध्यायी में रास का आयोजन करते हैं, कबीर अपने को 'राम की बहुरिया' मानते हैं और गुरुदेव रवीद्रनाथ करुणार्द्र हो, 'गीताञ्जलि' अर्पित करते हैं। व्यास, कबीर और रवीन्द्र के काव्य मे कान्ता-प्रेम रस को भूमिका मात्र है। वस्तुतः इन कवियों का महान् उद्देश्य है, लौकिक काव्य में अलौकिक प्राणशक्ति का संचार करना एव विश्वमानव की अन्तरात्मा में चैतन्य-रूपिणी भागवतरति की प्रतिष्ठा करना।

श्रीमद्भागवत ने परम्परागत संस्कारों एवं विश्वासों मे विराट् विप्लव उत्पन्न किया है। और कबीर ने इस विप्लव को जनजीवन तक पहुँचा दिया है, परन्तु इन दोनों कवियों की भावधारा एव चिन्तना भावुक प्राणियों के हाथो मे अगणित ज्योतिर्मय मशालें पकड़ा देती हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ, व्यास और कबीर की पुञ्जीभूत भावुकता को अपने हृदय मे धारण करके

विश्वकाव्य में सत् चित् आनन्द का अपार पारावार तरंगित कर देते हैं। गुरुदेव की शंखध्वनि-विश्व के कोने-कोने में प्रगाढ़ अनुराग की चेतना उत्पन्न करती है। व्यास का 'गोपीगीत' और कबीर की निरुपाधिक रस मे 'भींगी चुनरिया', गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के भावुक हृदय में अखिलेश का रसामृत प्रवाहित करती है।

वर्तमान युग मे रवीन्द्रनाथ विश्वशब्दकोष में जाज्वल्यमान हैं। वे विश्वमानव के हृदयासन पर प्रतिष्ठित हैं। उनकी इसी सर्वहृदयव्यापी भावना में भागवतरति प्रतिष्ठापित है। गुरुदेव की गौरव गरिमा में विश्वमानव का प्रेम भागवतरति से अनुप्रेरित होकर भक्तानुरञ्जिनी कविता का प्रणयन करता है।

मानवजीवन की कामना है आनन्दोपलब्धि। अत एव मानव के काम्य आनन्द से आनन्दस्वरूप भगवान की कल्पना करना नितान्त नैसर्गिक है। मानवजीवन में उपासना का भाव मूलप्रवृत्ति से सबद्ध है। उपासना उसी की की जाती है जिससे आनन्द की प्राप्ति हो। बड़े बड़े नास्तिक आनन्दस्वरूप परमात्मा की उपासना में विश्वास नहीं करते, परन्तु कान्ता-प्रेम मे निमग्न हो जाते हैं। अथवा राष्ट्र एव विश्व की उपासना में आस्था रखते हैं। उपासना मानवजीवन का स्थायी भाव है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ मानव के काम्य आनन्द को आनन्दस्वरूप भगवान से सश्लिष्ट करते हैं। इसी आनन्दसूत्र से ही वे प्रत्येक मानव के प्राणों को सबद्ध करते हैं। आनन्दस्वरूप भगवान के आनन्द-सूत्र से प्राणियों की अन्तरात्माओं में विचरण किया जाता है। गुरुदेव सर्वहृदय व्यापी आनन्द को विश्वमानव के प्राणों में सस्थापित करते हैं। इसी भाव के सहारे वे अनेकता में एकता एव भेद में अभेद का समन्वय करते हैं। उनका अखण्ड कवित्व एव प्रतिभा इसी लिए अगणित उत्ताल तरंगों मे उफनाती चलती है। कविगुरु रवीन्द्र के अनन्त रस का प्रवाह भागवतरति में भाँवरें लेने लगता है। वे आनन्दातिरेक से इस रससिन्धुके समक्ष वर्णन करते हैं :—

आमार सकल रसेर धारा।
तोमाते आज होक् न हारा।

अर्थात् मेरे सभी रसों की धारा तुम में एक हो। अखिल रसामृत मे ससार के सभी रस मिलकर एकरस हो जाते हैं। आनन्द का इच्छुक मानव इसी रस के लिए रति-रस-सिन्धु की कल्पना करता है; रसपिपासुओं ने रस-सिक्त-कल्पना के अभिनय के लिए एक सर्वोत्तम अभिनेता का रग-मञ्च प्रस्तुत किया है। श्रीमद्भागवतभक्त भावुक, एव रसिक की भावनाओ का क्रीडाक्षेत्र है। मावन की अनुभूतियाँ उन्मुक्त होकर रसस्वरूप ब्रह्म के समक्ष निःसकोच भाव से रस आनन्द एवं प्रेम का आस्वादन करती है। ससार के शायद ही किसी धर्म मे इतनी छूट हो; मानव की बहिरिन्द्रियाँ और अन्तरिन्द्रियाँ जाग्रत और सुषुप्त अवस्था में धर्म और नीति का कठोर अनुशासन एव नियंत्रण मानने को कदाचित् तैयार हों; परन्तु रति रस के सम्भोग के लिए लाज का आवरण बिल्कुल हट जाता है और प्राणी किसी भी प्रकार का अनुशासन एवं नियन्त्रण मानने को तैयार नहीं होता। भागवत में श्री व्यासजी का कान्ता-सम्मित-वाणी-विलास सभी रसों से निर्मित एक सर्वोत्तम रसायन है। इसकी सार्थकता मानवजीवन के सभी क्षेत्रों में प्रतिफलित हुई है। रास के विलास में रति रस का पूर्ण सम्भोग है। परन्तु यह भोग इन्द्रियों का सस्पर्श करता हुआ इन्दियातीत हो गया है। व्यास रास के माध्यम से मानवीय वासनाओं का बड़ी बुद्धिमानी से मार्गान्तरीकरण करते हैं। जिस प्रकार महाकवि कालिदास का पार्वती के समक्ष मनोभव भस्मीभूत होता है, उसी प्रकार व्यास की गोपियों के समक्ष विषाक्त वासनाये क्योंकि व्यास की गोपियाँ मातृशक्ति और आत्मशक्ति की प्रतीक हैं।

मानवमन की वासनायें अपनी तृप्ति का मार्ग ढूँढ लेती है। अतः गोपाल कृष्ण सामूहिक रूप से शरद्कालीन शुभ्र परिवेश मे मदनोद्दीपक वेणुवादन आरम्भ करते हैं। वे सामूहिक नेता ही नहीं, अभिनेता हैं। मधुमत्त भृगों की झंकार एवं पक्षियों की काकली समग्र वन को निनादित

करती है, निर्मल जल से भरे हुए सरोवरों में कमलों की सुगन्ध सम्पूर्ण वन-प्रान्तको सुवासित करती है। महर्षि व्यास ने आलम्बन और उद्दीपन विभावों से भागवत रति का जाग्रत रूप प्रस्तुत किया है

'भगवानपि ता रात्रीः शरदोत्फुल्लमल्लिका ।
वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे योगमायामुपाश्रितः ॥'

'शरदोत्फुल्लमल्लिका से शोभायमान उन रातों को देखकर भगवान ने भी रमण करने की इच्छा की।' श्रीमद्भागवत की "कृष्णगृहीत-मानस-गोपिका" एव शरदोत्फुल्लमल्लिका भागवतरति के लिए प्रसाधन हैं। श्री कृष्ण की रासलीला में रमण करने के लिए प्रेरित करने वाला वेणु जड़-चेतन के प्राणों में मधु-माधव की आनन्दोन्मत्तता का सचार करता है।

मधुपतिरवगाह्य चारयन् गाः
सह पशुपालबलश्चुकूज वेणुम् ।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का जीवन उपनिषदों की वसुन्धरा में प्रवाहित हुआ है। उनकी शिक्षा-दीक्षा उपनिषदों की गोद में विकसित हुई है। उपनिषदों के गाम्भीर्य की महिमा ने उन्हें आनन्दित किया है। वे विश्वमानव के हृदय में भागवतरति की आनन्दधारा निरन्तर प्रवाहित करने के लिए उपनिषदों से प्रेरणा पाते हैं। किन्तु रवीन्द्रनाथ की भावुकता एक दिन अस्थिर आनन्द के घात-प्रतिघात से तरंगित होने लगती है। वे हर्षोत्कर्ष से उल्लसित होकर कहने लगते हैं।

"आमि जनि ना तो की आनन्दे गढ़ा आमार अंग"

कविगुरु रवीन्द्र उपनिषद् पुत्र कहलाते हैं, किन्तु यह उनका अनुभूत आनन्द उपनिषद् का शान्त ब्रह्मानन्द नहीं है, प्रत्युत 'लील-नरवपु' की सत्योपलब्धि है। कवि भक्तिप्रिय भगवान के क्रीडाक्षेत्र में विचरण करता है। भगवान के क्रीडाक्षेत्र में रमण की अनुभूति चिन्मय आनन्द के लिए उसे उन्मत्त कर देती है। ऐसी अवस्था में भक्त और भगवान् भाव भूमि पर-

प्रतिद्वन्द्वी होकर अवतरित होते हैं। भक्तकवि सूर की निम्नलिखित पंक्तियों से यह बात अधिक स्पष्ट हो जाती है:—

'हरि हारे, जीते श्रीदामा, बरबसहीं कत करत रिसैयाँ।
जातिपाँति हम तें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ॥''

कौन हारता है और कौन हराता है अथवा कौन हार मान लेता है, यह तो भावात्मक विषय है; परन्तु रस-सिद्ध-कवि भगवद्विषयक प्रतिद्वन्द्विता में आनन्द-विभोर हो जाता है, यह भावुकता की विशेषता है। भागवतरति की सूक्ष्मता में साधक कवि की तन्मयता रस की जाग्रत अनुभूति है। कबीर इसी अनुभूति के साक्षात्कार से अपनी वासनात्मक अनुभूति की परिधि निर्धारित करते हैं। उनकी स्वैरिणी वासनायें परिणीता हो गई हैं। अत एव वे लोकापवाद की परवाह नहीं करतीं।

सन्त कबीर की आत्मा इसी लिए जीवन की विभिषिकाओं में सर्वदा मुसकराती रही; क्योंकि उन्हें अनुभव हो चुका था कि वे विश्वस्त भक्त हैं। अत एव भागवतरति में अनुरक्त होना, उनकी ऐकान्तिक साधना का मधुर पक्ष है। व्यास ने गोपीभाव से भागवतरति की प्रतिष्ठा की है और कबीर ने निर्गुन भाव से। वे निर्गुण संत हैं, अतः गोपीकृष्ण की सी सामूहिक रासलीला का अभिनय नहीं करते, किन्तु एकान्त में भाव-विभावों के सहारे प्रियतम की रति में अवश्य निरत हो जाते हैं:—

मन्दिर माँहि भया उजियारा
लै सूती अपना पीव पियारा।

सत कबीर के मन मे द्विधा एवं प्रथम प्रेम के कम्पन का भाव हलचल नहीं मचाता, क्योंकि यह उनकी पहली मुलाकात नहीं है, इसके पहले न मालूम कितने बार उन्होंने समागम किया है। उन्हें इस अवस्था मे अब अनुभव हो चुका है कि वे 'अविनासी दुलहा' के अनन्य आराधक है। वे अपने प्रियतम से किसी हालत में आनन्दलाभ कर सकते हैं। साधक कबीर इस उल्लास से लौकिक और पारलौकिक प्रेमियों को परिचित कराता है:—

जो सुख चहै तो लज्जा त्यागे,
पिया से हिल-मिल लागे।
घूँघट खोल अङ्ग भर भेंटे,
नैन आरती साजे॥

कबीर का रोम-रोम आज प्रेम-रस से निषिक्त है। प्रियतम अपने हाथों से उनका शृङ्गार कर रहा है। कोई प्रेमी जन किसी प्रियतमा को अपनी बनाने का दिलासा देता है तो उसे अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होने लगती है। वह रात दिन इसी आसक्ति में निमग्न हो जाती है और अपने सारे जीवन की गति-विधि रति में ही केन्द्रित कर देती है। कबीर की रति में आसक्त भावना इसका अपवाद नहीं है।

मानवजीवन में ऐसे अगणित अवसर आते हैं जिन्हें वह नहीं चाहता फिर भी वे गले पड़ जाते हैं, और कुछ ऐसे हैं जिन्हें वह चाहता है, किन्तु मृगमरीचिका की तरह वे भ्रामक सिद्ध होते हैं। प्राणों की आशा-मरीचिका उसे याद दिलाती है कि मरीचिका मरीचिका ही है—सत्य नहीं, फिर भी तृषित आत्मा अपनी तृप्ति का मार्ग ढूँढती है। बुद्धि उसका पाथेय होती है, मस्तिष्क उसका सहचर, और ज्ञान उसे प्रेरणा देता है। इस प्रकार चलते २ यात्रा जब समाप्ति पर आ ठहरती तब वह अपनी पूर्वकल्पित आशा के फूलों को चुनने के लिए हाथ बढाता है। वे बहुत दूर नहीं हैं—बिल्कुल नजदीक, तथापि बहुत सी दूरी का अनुभव होने लगता है। उस श्रान्त पथिक की मति भ्रमित हो जाती है। अतः उसकी गति—शारीरिक और मानसिक, शिथिल हो जाती है। फिर भी मन अत्यन्त साहसी होकर अग्रसर होता है। उसकी गति भी क्लान्तोद्यम होती है। सहसा निरन्ध्र अन्धकार को भेद कर प्रकाश की रश्मियाँ स्वर्णरेखाओं की तरह विकीर्ण होने लगती हैं। दिक्‌भ्रम का निर्णय हो जाता है। यह मानव की विज्ञानावस्था है। यह उसका विशेष ज्ञान है। यह वह विज्ञान नहीं है जो मानव को यन्त्र बना देता है, बल्कि यह मनुष्य को सत्-चित्-आनन्दमय बना देता है। सब मनुष्य समान रूप से

संवेदनशील नहीं होते, अतः सच्चिदानन्द की संवेदना का सबका समान रूप से अनुभव होना भी स्वाभाविक नहीं। सच्चिदानन्द की संवेदना भगवत् उपलब्धि है जिसे रसिक भावुक भक्त एवं कवि बड़ी तीव्रता से अनुभव करता है। उसे अतीत की घटनायें वर्तमान में दिखाई देती हैं और स्वप्निल जगत् की बहारें आँखों के सामने बारहों मास वसंत की तरह नजर आने लगती हैं। तात्पर्य यह है कि संवेदनशील मानव की आत्मा अत्यन्त अनुभूति-सम्पन्न होने से भागवतरति को इन्द्रियग्राह्य बना लेती है। व्यास श्रीमद्भागवत में मानवमन की अनुसन्धानमुखी यात्रा के चतुर्दिक 'जनतार्थविप्लवः' की शंखध्वनि करते हैं। उनकी भागवतरति में स्वल्पायु निर्बल मानव विश्व के कोने कोने में विप्लव का एकाधिपत्य स्थापित करता है। मानव के आत्म-बल के आगे संसार की बर्बरता घुटने टेक देती है। कबीर ने इस सत्य को समझा और लोगों को समझाया। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के बलिष्ठ हृदय ने इसी लिए ज्ञान के उपास्य, रसहीन वैराग्य की निधि, निर्विकार निरञ्जन ब्रह्म को प्रेम का भगवान माना है:—

एइ तो तोमार प्रेम, ओगो
हृदय-हरण।

श्रीमद्भागवत के भगवान् नटवर हैं। वही रवीन्द्र के हृदय-विहारी हैं। श्रीमद्भागवत का पूर्ण छायाचित्र रवीन्द्रनाथ हैं। श्रीमद्भागवत आत्मा है और रवीन्द्रनाथ देह। श्रीमद्भागवत मन्त्र है और रवीन्द्रनाथ—मन्त्रोद्‌गाता। श्रीमद्भागवत का मनुष्य भगवान के साथ सहवास करता है, भगवान के सहयोग से परिवार बसाता है। वह भगवान की सहयोगिता से इतनी आत्मीयता प्राप्त कर लेता है कि उसे भगवान की सत्ता में अपने आपको विलीन करने में अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति होती है। ऐसी अनन्यता के प्रति भगवान् भी कम भावुक नहीं हैं.—

फलतः उन्होंने व्यास के कण्ठ में बैठ कर कहा है:—

'विषयान् ध्यायतश्चित्तं विपयेषु विपज्जते
मामनुस्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते ।'

भगवान के भाव में भावित मन कृतकृत्य हो जाता है। भगवान् अपने भावुक भक्त के निकट अत्यधिक विनीत हो जाते हैं और साथ ही भावावेश में विह्वल होकर कहने लगते हैं:—

"न पारयेऽहं निरवद्यसंयुजाम्"—

अर्थात् तुम्हारे अनवद्य प्रेम के निकट मैं असमर्थ हूँ, हार मानता हूँ। रवीन्द्रनाथ की भक्त आत्मा ऐसी सत्ता के समक्ष कहती है:—

आमि न होले भुवनेश्वर
तोमार प्रेम हो तो ये मिछे।

'मेरे न होने पर तुम्हारा प्रेम, हे भुवनेश्वर! व्यर्थ हो जाता।' प्रेम की परिधि विश्वस्त भक्तों तक सीमित रहती है। प्रेमास्पद के बिना प्रेम निराश्रय हो जाता है। अत एव प्रेम के आधार के लिए प्रेम-पात्र चाहिए।

साध्यातीत सुदूर नभोमण्डल में भगवान् नहीं हैं—वे मेरे ही हृद् मन्दिर के विलासी हैं। आकाश में देखना चाहो तो वे वहाँ दिखाई देंगे, हृदय आकाश में भी वे विराजमान हैं। वायु के तड़ित्कम्पन में, प्रलय के झंझाजाल में दिग् दिगन्तव्यापी विश्वमोहिनी रूप का दर्शन करना चाहिए। हृदय के शुभ्र आस्तरण पर उन्हें उपवेशन कराना चाहिए। कबीर ने अनुरक्त होकर इसी भाव का विशदीकरण किया है:—

नैनों की करि कोठरी, पुतरी पलँग बिछाय।
पलकों की चिक डारिकै, पिया को लिया रिझाय॥
प्रियतम को पतिया लिखूँ, जो कहुँ होय विदेश।
तन में मन में नैन मे, ताको कहा सँदेश॥

भक्त-आत्मा का विश्वास है कि भगवान की विश्वमोहिनी माया का सयोग पाकर भगवान का सौन्दर्य देखा जा सकता है। ससार की सारी वस्तुयें योगमाया से अभिभूत हैं। भगवान् स्वय अपनी लीला योगमाया-

म्रपाश्रित होकर करते हैं। निभृत निलय में कुमुदसौरभ के अन्तर्गत किसी भी क्षण उनके चरण-प्रस्फुटित हो सकते हैं। भाव और रति का संबल चाहिए; हृदय तो उनका वासस्थान है ही। महाप्रभु चैतन्यदेव की अनुभूति है·—

"भक्तेर हृदये कृष्णेर सतत विश्राम"

श्रीमद्भागवत का कथन है:—यह जगत् भगवान का क्रीडाक्षेत्र है,—"जगत् क्रीडनकम्" "स्वविहारतन्त्रम्" आदि शब्दों मे व्यास ने भगवान को "क्रीडानरशरीर" एवं "क्रीडामनुज" सिद्ध करके रास की गोष्ठी की प्रतिष्ठा की है। ऐसे क्रिडामोदी भगवान् एकाकी कैसे रह सकते हैं; उनका समय आमोद प्रमोद के विना कट नहीं सकता। अतः उपनिषद् ने इसकी ओर सकेत किया:—

'स वै नैव एकाकी रमते' 'स द्वितीयम् ऐच्छेत' रवीन्द्रनाथ ने प्रतिध्वनित किया:—

'आमाय नीये मेलेछो एइ मेला,
आमार हियाय चलछे रसेर खेला।'

अर्थात् मुझे लेकर आपने यह मेला किया है, अतः मेरे हृदय मे रास की क्रीडा हो रही है; क्योंकि—

'प्राणेश आमार लीला भरे,
खेलेन प्राणेर खेला घरे।'

कबीर ने इसी प्रसग का चित्रण किया है। परन्तु उसमें भावात्मक पक्ष की अपेक्षा ज्ञानात्मक पक्ष सबल है:—

'हिरदै मे महबूब है, हरदम का प्याला,
पीयेगा कोई जौहरी, गुरुमुख मतवाला।'

प्रे म का प्याला पीकर भक्त विभोर हो जाता है:—

'पियत पियाला प्रे मका सुधरै सब साथी,
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी।'

प्रेम का प्याला पीकर भक्त का उन्मत्त हो जाना स्वाभाविक है उसे उन्माद की अवस्था में, रति के रग में रग जाना ससार के सभी सुखों से श्रेयस्कर प्रतीत होता है। अत एव कवि कहता है:—

'पिय को रूप कहाँ लगि बरनौं
रूपहिं माहिं समानी।
जो रंग रंगे सकल छबि छाके
तन-मन सबहिं भुलानी॥'

व्यास की रासलीला में और कबीर की फागलीला में अतीन्द्रिय भाव का चित्रण हुआ है। व्यास की रासलीला इन्द्रिय स्पर्श-रस की बलवती अनुभूति है, जिसे कवि ने अतिक्रम करके अतीन्द्रिय भागवतरति को गौरवान्वित किया है। कबीर ने अपने कवित्व को अपने ज्ञान-वैराग्य के उपदेशों से अवगुंठित कर दिया है। व्यास ने भी यत्किंचित् उपदेशात्मक निर्देश दिए हैं, परन्तु उपर्युक्त प्रसगों का उन्होंने ध्यान रखा है। कबीर उच्च कोटि के सत हैं। अत एव उनका कवित्व उनके ज्ञान-वैराग्य का पिछलगुआ दास-मात्र बन कर रह जाता है। हृदय की तीव्र अनुभूतियों को वे उन्मुक्त नहीं होने देते, प्रत्युत उस पर कड़ा नियत्रण रखते हैं। फलत. उनका ज्ञान-वैदग्ध्य कवित्व के साथ विद्रोह करता है। रवीन्द्रनाथ अपनी रसानुभूति को पूर्णरूपेण प्रवाहित करते हैं। अतः उनकी भाषा भावों की अत्यन्त सूक्ष्मता मे अवगाहन करने लगती है। रवीन्द्रनाथ ने व्यास और कबीर की पुंजीभूत भावुकता को आत्मसात् करके आनन्दोपलब्धि के लिए काव्य का प्रणयन किया है। आनन्द का इच्छुक सारा ससार है। परन्तु भावुकता के वशीभूत कवि-हृदय की आनन्दानुभूति जड़-चेतन के प्राणों में निरन्तर आनन्द और उल्लास का सचार करती है।

व्यास कबीर और रवीन्द्र ने भागवतरति के अन्तर्गत विरह की गहरी व्यथा को शरीरिणी चित्रित किया है। इन कवियों और साधकों की वाणी नारीनिसर्ग के प्राणों का सुकुमार सगीत है। कवि ससार का अत्यन्त कोमल,

सहृदय सदय एवं संवेदनशील प्राणी होता है। उसकी हृदय-स्पर्शी-कविता पूर्ण-मानवता के उत्कर्ष का निरूपण है। मनुष्य की कोमल वृत्तियों का विकास कहाँ तक हुआ है, यह तत् तत्कालीन कवियों के काव्य की सृष्टि से ज्ञात होता है। कवि संसार का सुहृद् है। भूगोल एव खगोल मे उसका अस्तित्व जाति-धर्म निर्विशेष है। वह जनताधर्म के लिए देश-काल-निर्विचार की पौरुषी-प्रिया का आलिंगन करता है। सम्भवतः इसी लिए कवि का आनन्दमय मन—"ब्रह्मावलोक धिषणाम्" एवं "मुकुन्द सेवौपायिकम्" हो जाता है। कवि मानवात्मा को सुन्दर से सुन्दरतर करना चाहता है। क्योंकि उसे सुन्दर वस्तु बहुत अच्छी लगती है। वह भावावेष मे जब उन्मत्त होकर सौन्दर्य के समक्ष रोने गाने लगता है, तो सामान्य हृदय-हीन लोग समझते हैं, कि इस पर पागलपन सवार है। परन्तु कवि हास-परिहास एवं मान-अपमान की बौछारों में अपनी गीली आँखों से दो गरम आँसू टपका देता है, क्योंकि उसे प्रिया और पृथिवी से आत्मीयता है।

कबीर की फागलीला ज्ञानात्मक है और व्यास की रासलीला भावात्मक। परन्तु भागवतरति का स्थायिभाव दोनों में है। अतः दोनों कवियो ने प्रिया और प्रियतम की अनुभूतियों को पार्थिव-रूप में प्रतिफलित करके वासनाओं का मार्गान्तरीकरण किया है। वासनाओं के अतृप्त रहने से भावना ग्रन्थियाँ बन जाती हैं; फलस्वरूप चरित्र का सुन्दरता से विकास नहीं हो पाता; अत एव मानवचरित्र के सुन्दर विकास के लिए तथा समुचित सगठन के लिए यह आवश्यक है कि फागलीला और रासलीला का अभिनय हो। इससे विषाक्त वासनाओं का सस्कार हो जाता है। सुसस्कृत वासना मानवसमाज का सद्गुण है। कबीर, व्यास और रवीन्द्र के रतिप्रसंग में यही सत्य निरूपित है।

गुरुदेव रवीन्द्र ने अपने काव्य मे नाना प्रकार की रसानुभूतियाँ चित्रित की हैं। जिसके अन्तर्गत सर्वश्रेष्ठ है प्रेम। प्रेम ही जगत् की समग्र काव्य-कला का प्राण है। वैष्णवसाहित्य में शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य एवं मधुर भावों का उन्मीलन हुआ है। परन्तु इनके अन्तर्गत मधुर भाव

सर्वश्रेष्ठ आसन पर अधिष्ठित है। उपर्युक्त पञ्च भावप्रेम का आंशिक प्रकाश पाकर उत्फुल्ल हुए हैं। प्रेम के पूर्ण प्रकाश के लिए, गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने मधुर भाव के अन्तर्गत प्रेम के आदर्श को विश्वमानव के सम्मुख उपस्थापित किया है। श्री राधा इस अखण्ड प्रेम का प्रतीक हैं। मधुप्रेमिक रवीन्द्रनाथ आनन्दोन्मत्त होकर वैकुंठ के देवता से पूछते हैं:—

"हे मोर देवता भरिया ए देह प्राण।
की अमृत तुमि चाहो करिवार पान॥
आमार नयने तोमार विश्व-छवि।
देखिया लइते साध याय तव कवि॥
आमार मुग्ध श्रवणे नीरव रहि।
शुनिया लइते चाहो आपनार गान॥
आमार चिते तोमार सृष्टि खानि।
ध्वनिया तुलिछे विचित्र एक वाणी॥
तारि साथे मिलिया तोमार प्रीति।
जागाये तुलिछे आमार सकल गीति॥
आपनारे तुमि देखिछो मधुर रसे।
आमारे माझारे निजेरे करिया दान॥"

भगवान् धरणी के धूलि-पथ पर विचरण करते हैं। इसी लिए कवि ने उन्हें "भूविचलच्चरणारविन्दम्" की उपाधि से विभूषित किया है। उपर्युक्त पंक्तियों में रवीन्द्रनाथ ने नित्य नवीन रङ्ग की छाया में मानव-हृदय को सुन्दर से सुन्दरतर देखा है। मानवदेह और मन की इस सार्थकता का अनुभव करके कवि रवीन्द्र पुलक उठा है। मानवशरीर में अपने आप की प्रतिष्ठा करके फिर उसका निर्निमेष दृष्टि से अवलोकन करके, आलिंगन करना—श्रीमद्भागवत का मधुरतम तत्त्व है। भक्तगोष्ठी के साथ भगवान की आनन्दक्रीडा ही रास है। दर्पण में अपनी प्रतिच्छबि को देख कर जो आनन्द शिशु को प्राप्त होता है, मानव में भगवत् भाव का प्रतिफलन देख कर भगवान् को भी इसी प्रकार की आनन्दानुभूति होती

है। इसका कारण यह है कि मनुष्य भगवान का अंश है। वह भगवान के समीप जा सकता है, और भगवान हो सकता है। इसी लिए मनुष्य के शुद्ध चित्त का दर्शन करने से भगवान को अपना ही रूप दिखाई देता है। रास-लीला भक्त और भगवान् के घनिष्ठ प्रेम-सम्बन्ध का रूपचित्र है। श्रीमद्भाग-वत में इसे पूर्णरूपेण चित्रित किया गया है:—

"रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभिः।
यथार्भकः स्वप्रतिबिम्बविभ्रमः॥"

भक्त के भाव-सरोवर में भगवत्-पद्म का विकास होता है। उसी हृद्-पद्म की सुधा को पान करने के लिए भगवान की तृष्णा बहुत बढ़ी रहती है। वह तृष्णा तो और किसी पेय से मिट नहीं सकती। रवीन्द्र के मुख से इसी मार्मिक भाव का उद्घाटन हुआ है। वे सर्वभूतों के हृदयों मे रहने वाले ईश्वर की सत्ता को असंदिग्ध भाव से उद्घाटित करते हैं। कवि के मुख से रहस्यमयी प्रश्न मुखरित हो उठता है:—

"ओहे अन्तरतम
मिटेछे कि तब सकल तियास, आसि अन्तरे मम
दुःख सुखेर लक्ष धाराय, पात्र भरिया दियाछि तोमाय
निठुर पीड़ने निंगाड़िवक्ष दलित द्राक्षा सम।"

हे! अन्तरतम, (आत्मीय) मेरी अन्तरात्मा मे आकर क्या तुम्हारी सारी प्यास बुझ गई है। निष्ठुर पीड़न से, अपने वक्ष को अंगूर की तरह दलित करके सुख दुःख की लाखों धाराओं से, पात्र भर कर तुम्हें दिया है। प्रत्येक मानव एक दूसरे से पर्याप्त विभिन्न। धर्मशास्त्र का अन्त नहीं है और न अनुभूति की सीमा है। हिन्दू षड् दर्शन, गीता तथा अन्यान्य शास्त्र जगत को दुःख का आलय मानते हैं बौद्ध धर्म की दुःख के समक्ष प्रतिज्ञा है:—

"दुःखस्य आत्यन्तिकी ऐकान्तिकी निवृत्तिः परम पुरुषार्थः।"

दुःख के ऊपर जाकर आनन्दलाभ होता है। दुःख का चिन्तन करते-करते संसार दुःख को महत्ता देने लगता है। वेदान्त, दर्शन और उपनिषदों ने ही सर्वप्रथम आनन्द का सन्धानसूत्र हमारे हाथों में दिया है। इसके अति-रिक्त श्रीमद्भागवत ने सुदृढ़ कण्ठ से दुःख के अनस्तित्व की घोषणा करके

आनंन्द को जीवन के प्रभुत्व द्वारा स्थापित किया है। बीसवीं शताब्दि के कविगुरु रवीन्द्रनाथ ने भागवत के स्वर में स्वर मिला कर गान किया है.—

आछे दुःख आछे मृत्यु विरह दहन लागे।
तबु ओ, शान्ति, तबु आनन्द, तबु अनन्त जागे ॥

प्रेमिक कवि रवीन्द्र का काव्य आनन्द की महारथयात्रा है। प्रेम से स्निग्ध आलिंगन द्वारा कविगुरु रवीन्द्र मरण को श्यासुन्दर की तरह आवाहन करते हैं, वरण करते हैं। अभिनव साज-सज्जा से मरण उन्हें मानो सजाने आया है:—

'मरण रे तु हूॅ मम श्याम समान'

कबीर मरण को सुहाग की रात की तरह कुतूहलपूर्ण बनाते हैं। परन्तु ज्ञानात्मक सत्य को भावात्मक ढग से कहना उनकी प्रकृति के विरुद्ध प्रतीत होता है। अत एव वे 'यमराज' घू घू शब्द तथा जग से सबन्धविच्छेद की याद दिला कर श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध करने का उपक्रम करते हैं:—

"कौनो ठगवा नगरिया लूटल हो।
चॅदन काठ का बनल खटोलना तापर दुलहिन सूतल हो।
उठौ री सखी मोरी मॅाग सॅवारौ दुलहा मोसे रूसल हो।"

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ और व्यास के काव्य में तात्त्विक दृष्टि से पर्याप्त साम्य है। परन्तु गुरुदेव की भावात्मक अनुभूति ज्ञानात्मक अनुभूति के साथ सतुलित है और व्यास की ज्ञानात्मक अनुभूति रागानुगा भक्ति से अनुप्राणित होने से भाव की अपेक्षा धर्म में अधिक आसक्त है। गुरुदेव अपनी कवित्व शक्ति की परिधि आनन्द और उल्लास तक ही सीमित रखते हैं। और कबीर, चूँकि उन्होंने दुनियाँ अपने आँखों से देखी है, इस लिए अपने भावों को इलहाम की सरहद पर ले जाकर छोड़ देते हैं। व्याह और सुहाग के रूपक हृदय की प्रेमवासना को आनन्दमग्न नहीं कर पाते, क्योंकि इन रूपकों के पीछे मृत्यु का भयकर स्वरूप छिपा हुआ है, जिसे सन्त कबीर बार-बार याद कराता है। ससार तो दुःखमय है ही, इन दुःखों की याद दिलाना, मानव की आयु क्षीण करना है। आनन्द और

उल्लास से मानव अगणित शरद् ऋतुओं को शोभा और सुख-ऐश्वर्य को भोगता हुआ संसार मे प्रगति और समुन्नति की ओर अग्रसर होता है।

जब इन्द्रियज आकाक्षा आत्मनिष्ठ होकर विरह का रूपक प्रस्तुत करती है; तब निर्गुण ब्रह्म की अपेक्षा सगुण का भाव चित्र रूप मे चित्रित हो जाता है। परन्तु कबीर की महत्ता इसी लिए सर्वोत्कृष्ट है कि उन्होंने सूक्ष्म ब्रह्म को अपने सूक्ष्म भावों की तूलिक से अतिरंजित किया है। असाध्य ब्रह्म को उन्होंने अपनी सरल प्राणमयी भाषा एव भावों के रूपक द्वारा सर्व आराध्य बना दिया है। विद्वान् और अविद्वान् सभी कबीर की रसानुभूति से प्रभावित होते हैं:—

'पिया ऊँची रे अटरिया तोरी देखन चली।'

अथवा 'मैं ठाढ़ी विरहिन मग जोऊँ प्रियतम तुम्हरी आस।'

व्यास कबीर और रवीन्द्र की भागवतरति मानवात्मा को केवल स्पर्श ही नहीं करती बल्कि उसे आनन्दरस से निषिक्त कर देती है। यह भावना पूर्णरूपेण विश्वोन्मुख होकर पृथिवी को सुहागिन बनाती है तथा 'विश्व हये याय 'मधुमय' अर्थात् विश्व मधुमय हो जाय, इसके लिए सुधावृष्टि करती है। भागवतरति मे निमग्न भक्त निर्मीकता से जीवन-मरण मे आनन्द का अनुभव करता है। सर्प के निर्मोक त्याग की तरह जीर्ण देह का त्याग भक्त की आँखों के सामने ही होता है। श्रीमद्भागवत के राजा परीक्षित ने अनुभव किया था कि मृत्युसर्प ने उनकी देह का सिर्फ दर्शन किया है—उन्हे नहीं। ऐसा भावुक, साधक एव भक्त—जिसके निकट मृत्यु हताश होकर लौट जाती है, वरेण्य है:—

'भगवन् तक्षकादिभ्यो मृत्युभयो न बिभेम्यहम्'

मृत्यु से भयभीत होने वाला मानव अभ्युदय और निश्रेयस् की सिद्धि नहीं कर पाता। राजा परीक्षित को ज्ञात है कि सप्तम दिन तक्षक उन्हे दशन करेगा, किन्तु उन्होंने कहा—मृत्यु आये, विपद् आये, किन्तु वह मुझे स्पर्श नहीं कर सकती। हम मृत्यु के निकट अस्पृश्य हैं। वह मेरी देह को ही लेकर खींचतान करेगी—मुझे नहीं पायेगी।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने जीवन के अन्तर्गत आनन्द और प्रेम की खोज

तो की ही है, मरण में भी उन्हें आनन्द और प्रेम की वंशी-ध्वनि सुनाई देती है। मृत्यु जीवन से पृथक् नहीं है—वह जीवन की परमात्मीय है। जीवन के साथ उसकी शत्रुता नहीं है, और न वह जीवन की समाप्ति है—वह अनन्त काल से प्रवाहित होने वाले जीवन की द्वाररक्षिका है। उसके द्वार को पार करके हम भगवान् का सान्निध्य प्राप्त करते हैं। भगवान् ही हमारे महाप्राण और महाजीवन हैं। उनसे मिलने पर जीवन का विच्छेद नहीं होता, बल्कि अभिनव जीवन की प्राप्ति होती है। इसी लिए सन्त कबीर ने भागवतरति के अन्तर्गत भक्त और भगवान का तादात्म्य प्रस्तुत किया है:—

....

मन में मन, नैनन में नैना, मन नैना इक हो जाई।
सुरत सोहागिन मिलन पिया को, तन कै नयन बुझाई॥
कहैं कबीर मिलै प्रेम-पूरा-पिया में सुरत मिलाई।

व्यास-कबीर और रवीन्द्रनाथ आनन्द भगवान के पुजारी हैं। पृथिवी के सब प्रकार के सुमनों का चयन करके उन्होंने अपनी भागवतरति की आराधना की है। भक्ति-चन्दन के मांगलिक उपचार से इन कवियों ने म्रियमाण मानव को जीवनदान दिया है। इस साधक कवियों की अमर भारती विश्व मानव के प्राणों में एकात्म्य भाव की प्रतिष्ठा करती है। रूप, रस, गन्ध एवं आनन्द के देवता की पूजा रूप, रस, गन्ध एवं आनन्द द्वारा ही की गई है। भगवान् की मुख मदिरा पूत वाणि मानवात्मा का अभय मन्त्र है। इसी लिए कविगुरु रवीन्द्र स्तवगान करते हैं:—

तोमारे जानिले नाहि केहो पर,
नाहि कोनो माना, नाहि कोनो डर।
सबारे मिलाये तुमि जागितेछो,
देखा य्येनो सदा पाई।
दूरके करिले निकट, बन्धु,
परके करिले भाई। (गीताञ्जलि)

अन्वेषण-तत्पर किरातों के मयूरपुच्छों ने कविगुरु रवीन्द्र की भावुक आत्मा को आनन्दविह्वल कर दिया था। पुण्यसलिला भागीरथी के झरने के जल-विन्दुओं को धारण करने वाला, वारम्बार देवदारु वृक्षों को कँपाने वाला तथा मोरों के पखों को उल्लसित करने वाला देवतात्मा हिमालय का पवन कवियों और मनीषियों के द्वारा सेवन किया जाता रहा है। कवीन्द्र रवीन्द्र उसके रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श के साथ ही उसके संगीत मे तन्मय हो गये। उन्होंने निम्नलिखित पक्तियों में अपने मनोभाव को यत्किंचित् व्यक्त करने की चेष्टा की है:—

"मृग-अन्वेषण, तत्पर किरातेर माथाय ये मयूरपुच्छ आछे ; वातास ताहाकेइ चिरिया चिरिया भाग करितेछे, एइ सूक्ष्मताय आमाके बड़ोइ पीड़ा दिते लागिलो।—" 'पितृदेव' जीवन स्मृति।

उपर्युक्त श्लोक की सूक्ष्मता ने कवि के कोमल एव भावुक हृदय को पीड़ा दी। इसका कारण सम्भवतः यह था कि सूक्ष्मता को सहिष्णु-भाव से उपलब्ध करके फिर खण्डों को जोड-जोडकर अखण्ड आनन्द की अनुभूति करना उसके धैर्य के बाहर हो गया। इस श्लोक की समग्रता के अखण्ड सगीत के साथ वह आत्मरति एव आत्मोत्सर्ग के दिग्दिगन्तव्यापी आनन्द-संगीत मे समाधिस्थ होना चाहता था। इस भावानुभूति की उपलब्धि के लिए कवि का मानस अधीर हो गया और वह महाकवि कालिदास के कवि-धर्म के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगा:—

कविवर, कबे कोन् विस्मृत वरषे,
कोन पुण्य आषाढ़ेर प्रथम दिवसे।
लिखेछिले मेघदूत।...(मेघदूत, कवीन्द्र रवीन्द्र)

अर्थात्, 'हे कविवर (कालीदास) कब किस विस्मृत वर्ष में, किस आषाढ़ के प्रथम दिवस तुमने 'मेघदूत' लिखा था।'

वर्षा के समागम मे नवमेघमाला जब अप-रूप सौन्दर्य के साथ आकाश में समुदित होती है, तो विरही जनों का चित्त चचल हो जाता है। नवमेघ की मृदु गर्जना प्रणयी की हृदयतन्त्री को प्रताड़ित करके

का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उनका काव्य पूर्व और पश्चिम की धाराओं से तीर्थराज प्रयाग बन गया है। वे महाकवि कालिदास से बहुत प्रभावित हुये थे और साथ ही शैली और कीट्स से भी प्रेरणा ली। परन्तु ये सब प्रभाव और प्रेरणायें उनके काव्य का उपादान मात्र हैं। बंगवैष्णव कविओं के लिरिक ने भी उनकी भावुक आत्मा को अनुप्राणित किया था, फलतः उनकी भाषा अत्यधिक सरस एव कोमलकान्त हो गई और वे वैष्णव कविता के शिल्प धर्म को स्वीकार करने लगेः—

मरण रे,
तुँहुँ मम श्याम-समान।
मेघ वरण तुझ, मेघ-जटा-जूट,
रक्त-कमल-कर, रक्त अधर-पुट,
ताप विमोचन करुण कोर तव,
मृत्यु-अमृत करे दान,
तुँहुँ मम श्याम-समान।

कालिदास कवीन्द्र रवीन्द्र को बहुत प्रिय थे। अतः उन्होंने महाकवि के अमर काव्य 'कुमार सम्भवम्' और 'मेघदूत' का गम्भीर अध्ययन किया था। उन्होंने एक स्थान पर 'कुमार सम्भवम्' के विषय में लिखा है कि कुछ बड़ी अवस्था में 'कुमार सम्भव' की पक्तियों ने मुझे भाव-विभोर कर दिया :—

मन्दाकिनी-निर्झर शीकराणा,
वोढा मुहुःकम्पितदेवदारुः।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥

'एइ श्लोकटि पड़िया एक दिन मनेर भितरटा भारी मातिया छिलो। आर किछुई बूझी नाई—केवल 'मन्दाकिनीनिर्झरशीकर' एव 'कम्पित देवदारुः' एइ दुइटी कथाए आमार मन भुलाइया छिलो। समस्त श्लोक-रटि रसभोग करिबार जन्य आमार मन व्याकुल होइया उठिलो।' मृग-

अन्वेषण-तत्पर किरातों के मयूरपुच्छों ने कविगुरु रवीन्द्र की भावुक आत्मा को आनन्दविह्वल कर दिया था। पुण्यसलिला भागीरथी के झरने के जल-बिन्दुओं को धारण करने वाला, बारम्बार देवदारू वृक्षों को कँपाने वाला तथा मोरों के पखों को उल्लसित करने वाला देवतात्मा हिमालय का पवन कवियों और मनीषियों के द्वारा सेवन किया जाता रहा है। कवीन्द्र रवीन्द्र उसके रूप, रस, गन्ध एवं स्पर्श के साथ ही उसके संगीत में तन्मय हो गये। उन्होंने निम्नलिखित पंक्तियों में अपने मनोभाव को यत्किंचित् व्यक्त करने की चेष्टा की है:—

"मृग-अन्वेषण, तत्पर किरातेर माथाय ये मयूरपुच्छ आछे; बातास ताहाकेइ चिरिया चिरिया भाग करितेछे, एइ सूक्ष्मताय आमाके बड़ोइ पीड़ा दिते लागिलो।—" 'पितृदेव' जीवन स्मृति।

उपर्युक्त श्लोक की सूक्ष्मता ने कवि के कोमल एव भावुक हृदय को पीड़ा दी। इसका कारण सम्भवतः यह था कि सूक्ष्मता को सहिष्णु-भाव से उपलब्ध करके फिर खण्डों को जोड़-जोड़कर अखण्ड आनन्द की अनुभूति करना उसके धैर्य के बाहर हो गया। इस श्लोक की समग्रता के अखण्ड संगीत के साथ वह आत्मरति एव आत्मोत्सर्ग के दिग्दिगन्तव्यापी आनन्द-संगीत मे समाधिस्थ होना चाहता था। इस भावानुभूति की उपलब्धि के लिए कवि का मानस अधीर हो गया और वह महाकवि कालिदास के कवि-धर्म के साथ आत्मीयता का अनुभव करने लगा:—

कविवर, कबे कोन् विस्मृत बरषे,
कोन पुण्य आषाढ़ेर प्रथम दिवसे।
लिखेछिले मेघदूत।...(मेघदूत, कवीन्द्र रवीन्द्र)

अर्थात्, 'हे कविवर (कालीदास) कब किस विस्मृत वर्ष में, किस आषाढ़ के प्रथम दिवस तुमने 'मेघदूत' लिखा था।'

वर्षा के समागम में नवमेघमाला जब अप-रूप सौन्दर्य के साथ आकाश में समुदित होती है, तो विरही जनों का चित्त चंचल हो जाता है। नवमेघ की मृदु गर्जना प्रणयी की हृदयतन्त्री को प्रताड़ित करके

का अनुशीलन करने से ज्ञात होता है कि उनका काव्य पूर्व और पश्चिम की धाराओं से तीर्थराज प्रयाग बन गया है। वे महाकवि कालिदास से बहुत प्रभावित हुये थे और साथ ही शेली और कीट्स से भी प्रेरणा ली। परन्तु ये सब प्रभाव और प्रेरणायें उनके काव्य का उपादान मात्र हैं। वगवैष्णव कविओं के लिरिक ने भी उनकी भावुक आत्मा को अनुप्राणित किया था फलतः उनकी भाषा अत्यधिक सरस एव कोमलकान्त हो गई और वे वैष्णव कविता के शिल्प धर्म को स्वीकार करने लगेः—

मरण रे,
तुँहुँ मम श्याम-समान।
मेघ वरण तुझ, मेघ-जटा-जूट,
रक्त-कमल-कर, रक्त अधर-पुट,
ताप विमोचन करुण कोर तव,
मृत्यु-अमृत करे दान,
तुँहुँ मम श्याम-समान।

कालिदास कवीन्द्र रवीन्द्र को बहुत प्रिय थे। अतः उन्होंने महाकवि के अमर काव्य 'कुमार सम्भवम्' और 'मेघदूत' का गम्भीर अध्ययन किया था। उन्होंने एक स्थान पर 'कुमार सम्भवम्' के विषय में लिखा है कि कुछ बड़ी अवस्था में 'कुमार सम्भव' की पक्तियों ने मुझे भाव-विभोर कर दिया :—

मन्दाकिनी-निर्झर शीकराणा,
वोढा मुहुःकम्पितदेवदारु.।
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातै-
रासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः॥

'एइ श्लोकटि पडिया एक दिन मनेर भितरटा भारी मातिया छिलो। आर किछुई बूझी नाई—केवल 'मन्दाकिनीनिर्झरशीकर' एव 'कम्पित देवदारु.' एइ दुइटी कथाए आमार मन भुलाइया छिलो। समस्त श्लोक-रटि रसभोग करिबार जन्य आमार मन व्याकुल होइया उठिलो।' मृग-

अर्थात्,

कवीन्द्र रवीन्द्र मेघदूत का अवलम्बन करके महाकवि कालिदास की मर्मवाणी का मार्मिक संगीत सुनने के लिए आत्मीय बन गये हैं। वे कवि के अपूर्व माधुर्यमय झंकार का अनुरणन उज्जयिनी के चतुर्दिक बड़ी संवेदना से सुनते हैं। आषाढ़ मास का प्रथम दिवस महाकवि कालिदास की अन्तर्गूढ व्यथा का उच्छ्वसित आदर्श एव विश्व के शापग्रस्त प्रणयी का उद्वेग है। अनुराग की अधिकता, प्राणप्रिया का मनस्तुष्टिविधान एव सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन; फुल्ल-कुसुमित द्रुम-दल-शोभित कानन की विचित्र शोभा, पल्लव बहुल वृक्षों की शाखाओं पर बैठे हुए वन-विहगों की काकली, नयनाभिराम कुरगगण की आतंक-चञ्चल आंखों की आपाग-भङ्गी, उनका सलील नृत्य, विरह क्लिष्ट यक्ष के विषाद के ही कारण हुआ है। इन आलंबन और उद्दीपन विभावों का ससार मे अभाव नहीं है, परन्तु 'मेघदूत' की सृष्टि में इन विभावों को लेखनी से उन्मीलित करना, कवि के प्रगाढ अनुराग, प्रवल आसक्ति एवं अन्तर्गूढ व्यथा के साथ विपुल उन्माद का परिचायक है। सम्पूर्ण काव्य मे यक्ष का गम्भीर अनुराग मूर्त-एवं प्राणवान् हो उठा है। हाय! हतभाग्य प्रेमिक अपनी प्राणप्रिया को प्राणों से भी अधिक प्यार करता था, फलतः उसका विश्वास था कि उसके विरह मे उसकी पत्नी सम्भवतः जीवित न बचेगी। यदि किसी प्रकार वह अपना कुशल-संवाद प्रिया के निकट तक पहुँचा सके तो शायद उसकी प्राणरक्षा हो सकती है। इसी लिए 'दयिता जीवितालम्बनार्थी' यक्ष मेघ को दूत बनाकर प्रिया के पास भेजता है। वह स्वयं सब दु.ख सहन कर सकता है, परन्तु प्रिया का लेशमात्र दुःख भी उसे असह्य है। इसी लिए उसने मेघ से विशेष अनुरोध किया—

'हे मेघ, यदि तुम्हें दिखाई दे कि मेरी प्रिया सुप्तिमग्न है, तो फिर

---

* दाँत अथवा सींघ से मिट्टी खोद-खोद कर उछल-कूद करना। वप्रकीडा=(वप्र=क्षेत्र, भूमि) उत्खातकेलि।

उसके अनुराग को अत्यधिक वर्द्धित करती है। किस सुदूर अतीत में, किस आषाढ़ के प्रथम दिवस उज्जयिनी का कवि विरही यक्ष की मर्मवेदना से कातर होकर अपनी मर्मवाणी को अमर भाषा में लिपिबद्ध करके विश्व के प्रणयी जनों के चित्त में अमृतधारा वर्षा गया है, हम लोग अब भी उसी सुधापान से परम परितृप्ति लाभ करके कृतार्थ होते हैं, एव उसी विशिष्ट दिन का स्मरण करके कवि के प्रति श्रद्धान्वित होते हैः—

'आषाढ़स्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम् ।
वप्रक्रीडा परिणितगजप्रेक्षणीयं ददर्श ।।' (मेघदूत,कालिदास)

अर्थात् प्रिया-विरह में अत्यन्त कातर एव सतापित यक्ष दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगा, तदुपरान्त उसके कनकवलय करयुगल से स्खलित हो पड़े, अतः उसके हस्त अलकार-विहीन हो गये। उसने इस प्रकार उसी रामगिरि- आश्रम में कुछ मास व्यतीत करके आषाढ़ के प्रथम दिन देखा, वप्रक्रीडापरायण मत्त मातंग की तरह रमणीय एव दर्शनीय नवजलधर समुदित होकर गिरि का आलिंगन कर रहे हैं कविगुरु रवीन्द्र महाकवि कालिदास का 'मेघदूत' पढकर तथा उसकी भाव-धारा का अवलम्बन करके उच्छ्वसित हो रहे हैं —

सेदिन से उज्जयिनी-प्रासाद-शिखरे ।
की ना जानि घनघटा, विद्युत उत्सव ॥
उद्दाम पवनवेग, गुरु गुरु रव ।
गम्भीर निर्घोष सेइ मेघसंघर्षेर ॥
जागाये तुलियाछिलो सहस्रवर्षेर ।
अन्तर्गूढ़ वाष्पाकुल विच्छेद क्रन्दन ॥
एक दिने । छिन्न करि कालेर बन्धन ।
सेइ दिन झरे पड़े छिलो अविरल ॥
चिर दिवसेर येन रुद्ध अश्रुजल ।
आर्द्र करि तोमार उदार श्लोक राशि ॥

(मेघदूत, मानसी)

कवीन्द्र रवीन्द्र कालिदास और कीट्स के काव्य से पर्याप्त अनुप्राणित हुए हैं। कालिदास और कीट्स का शिल्प धर्म चित्रात्मक है। दोनों के काव्य की मीमासा करने से ज्ञात होता है कि कालिदास की पृष्ठभूमि सास्कृतिक है, और कीट्स की नितांत मूल-प्रवृत्यात्मक। कालिदास भारत का सास्कृतिक कवि है, अतः उसने परिणयोन्मुख प्रणय एव परिणीता की आसक्ति का उन्मुक्त चित्रण किया है। परन्तु कीट्स का परिवेश कालिदास से भिन्न है। उसका प्रणय किसी सांस्कृतिक प्रणाली मे प्रवाहित न हो सका, वरन् उसके प्रणय की अप्रतिहत गति उद्दाम वासना से आन्दोलित होकर उन्मादिनी हो गई। कालिदास के समक्ष त्रिवर्ग की कार्यसूची है, परन्तु बेचारे कीट्स के पास मानव-मन की मूल प्रवृत्तियों और उससे सबद्ध सवेगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। कवि ससार का अत्यन्त कोमल और सवेदनाशील प्राणी होता है। वह संसार की संवेदनाओं का अनुभव करता है। और तद्रूप काव्य का प्रणयन करता है। कविगुरु रवीन्द्र में कालिदास और कीट्स की चित्रात्मक शैली के प्रति यथेष्ट मोह है। कालिदास उमा और इन्दुमती के सौन्दर्य को तूलिका से उन्मीलित करते हैं।

'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं
सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्'

(कुमारसम्भवम्)

कीट्स अपनी रूपसी का अल्लहड़ यौवन निम्नलिखि प्रकार से चित्रित करता है:—

I see a lily on thy brow
with anguish moist and fever dew,

(La Belle Dame Sans Merci)

और रवीन्द्र की लेखनी कहती है—'प्रेम लिखितेछे गान कोमल आखरे'

कालिदास और कीट्स ने सौन्दर्यचित्रण मे चित्ररीति का निरूपण किया है। इन दोनो कवियों की प्रणाली कवीन्द्र रवीन्द्र से भिन्न है क्योंकि

गर्जन न करना, कुछ काल प्रतीक्षा कर लेना। निद्रा के स्वप्न में सम्भवतः वह मुझे प्राप्त करके आलिंगन कर रही होगी, तुम उसके इस सुख को भग न कर देनाः'—

'मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित् ।
सद्यः कण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥'

प्रिया के प्रति उसका अनुराग कितना गम्भीर है। प्रिया के विरह में कातर होकर वह लगातार रोता रहता है। अथवा शिला तल पर अपने हाथ से प्रिया की प्रतिकृति अङ्कित करके एक अनिर्वचनीय सुखलाभ की चेष्टा करता रहता है परन्तु उच्छ्वसित आँसुओं ने उसके चित्र को धोकर उसे उस सुख से भी वचित कर दिया है।

यक्ष अपनी प्रियतमा के सौन्दर्य की समता प्रकृति की किसी वस्तु में नहीं पाता, अतएव पत्नी के पूर्ण सौन्दर्य के उपभोग की साध बनी ही रही। उसे बाध्य होकर येन केन प्रकारेण प्रियगुलता में शरीर की, हरिणी की चचल दृष्टि मे प्रिया के दर्शन की, मयूरपुच्छ में उसके केशराशि की, एव छोटी छोटी नदीतरगों में प्रिया की भ्रूभगी के सादृश्य की कल्पना करनी पड़ी। केवल यक्ष ही अपनी प्रिया के प्रति इतना सवेदनशील हो, ऐसा नहीं है, उसकी प्रिया भी उसके लिए समभाव से व्याकुल है। महाकवि कालिदास ने दोनों पक्षों की मर्मवेदना का चित्रण बड़ी कुशलता से किया है।

कविगुरु रवीन्द्र महाकवि कालिदास के आन्तरिक उच्छ्वास का स्रोत खोजते-खोजते भावावेश में अपना और अपने प्रान्त का सास्कृतिक एव प्राकृतिक परिचय देने लगे हैं। कवि के नयनों में 'गीत गोविन्द' के प्रणेता पीयूषवर्षि-श्री जयदेव का मेघों से मेदुर अम्बर और दिगन्त व्यापी तमाल-विपिन की श्यामछाया समाई हुई है। वे अपने मेघदूत में कालिदास के भावों को जिज्ञासु भाव से आत्मसात् करके 'अन्तर्गूढ विच्छेदक्रन्दन' का विशदीकरण करते हैं।

कवीन्द्र रवीन्द्र कालिदास और कीट्स के काव्य से पर्याप्त अनुप्राणित हुए हैं। कालिदास और कीट्स का शिल्प धर्म चित्रात्मक है। दोनों के काव्य की मीमासा करने से ज्ञात होता है कि कालिदास की पृष्ठभूमि सास्कृतिक है, और कीट्स की नितांत मूल-प्रवृत्यात्मक। कालिदास भारत का सास्कृतिक कवि है, अतः उसने परिणयोन्मुख प्रणय एव परिणीता की आसक्ति का उन्मुक्त चित्रण किया है। परन्तु कीट्स का परिवेश कालिदास से भिन्न है। उसका प्रणय किसी सास्कृतिक प्रणाली मे प्रवाहित न हो सका, वरन् उसके प्रणय की अप्रतिहत गति उद्दाम वासना से आन्दोलित होकर उन्मादिनी हो गई। कालिदास के समक्ष त्रिवर्ग की कार्यसूची है, परन्तु बेचारे कीट्स के पास मानव-मन की मूल प्रवृत्तियों और उससे सबद्ध सवेगों के अतिरिक्त और कुछ नहीं। कवि ससार का अत्यन्त कोमल और सवेदनाशील प्राणी होता है। वह संसार की सवेदनाओं का अनुभव करता है। और तद्रूप काव्य का प्रणयन करता है। कविगुरु रवीन्द्र मे कालिदास और कीट्स की चित्रात्मक शैली के प्रति यथेष्ट मोह है। कालिदास उमा और इन्दुमती के सौन्दर्य को तूलिका से उन्मीलित करते हैं।

'उन्मीलितं तूलिकयेव चित्रं
सूर्यांशुभिर्भिन्नमिवारविन्दम्'
(कुमारसम्भवम्)

कीट्स अपनी रूपसी का अल्लहड़ यौवन निम्नलिखि प्रकार से चित्रित करता है:—

I see a lily on thy brow
with anguish moist and fever dew,
(La Belle Dame Sans Merci)

और रवीन्द्र की लेखनी कहती है—'प्रेम लिखितेछे गान कोमल आखरे'

कालिदास और कीट्स ने सौन्दर्यचित्रण मे चित्ररीति का निरूपण किया है। इन दोनों कवियो की प्रणाली कवीन्द्र रवीन्द्र से भिन्न है क्योंकि

रवीन्द्रनाथ ने सगीतरीति का अनुसरण किया है। किन्तु इनकी 'मानसी' की कविताओं में कुछ कालिदास का प्रभाव परिलक्षित होता है। क्योंकि दोनों कवियों को प्राचीन भारत के तपोवन और दाम्पत्य अनुराग ने अनुप्राणित किया है, अतः—

"आमरा दुजने भासिया एसेछि युगल प्रेमेर स्रोते
अनादि कालेर हृदय-उत्स होते।
आमरा दुजने करियाछि खेला कोटि प्रेमिकेर माझे
विरह विधुर नयन सलिले मिलन मधुर लाजे"
(अनंत प्रेम)

'हम दोनों अनादिकाल के हृदय स्रोत में एव युगल प्रेम के स्रोत में सतरण करते आये हैं। करोड़ों प्रेमियों के बीच हम दोनों ने विरह से दुःखी होकर रोने में और मधुर-मिलन की लज्जा में क्रीड़ायें की हैं।'

कविगुरु रवीन्द्र बड़ी सवेदना के साथ कालिदास की अमर आत्मा और अमर काव्य को सबोधित करके कहते हैं.—

कवि, तव मन्त्रे आजि मुक्त होये जाय
रुद्ध एइ हृदयेर बन्धनेर व्यथा।
लभियाछि विरहेर स्वर्गलोक जेथा।
चिरनिशि यापितेछे विरहिनी प्रिया
अनन्त सौन्दर्य-माझे एकाकी जागिया॥
(मेघदूत, कवीन्द्र-रवीन्द्र)

"हे कवि, जहाँ विरह का स्वर्गलोक प्राप्त हुआ है और अनन्त सौन्दर्य मे एकाकी विरहिणी प्रिया जागकर अनन्त रातें बिताती है, तुम्हारे मत्र से आज इस हृदय बन्धन की रुद्ध (बाधा प्राप्त) व्यथा मुक्त हो जाय।"

अर्द्धरात्रि का समय है। चारों ओर घनी घटायें उमड़-घुमड़ कर मूसलाधार पानी बरसा रही हैं। रोती हुई हवा मानों अनन्त क्षितिज की ओर चल पड़ी है। कवि की आँखों मे नींद नहीं है। वह सोच रहा है कि महाकवि के यक्ष का विरह और अज का विलाप उपलक्ष्य मात्र हैं, वस्तुतः कवि की कामना समग्र मानवजाति के पारस्परिक आत्मविलाप एव हतभाग्य के प्रति सहानुभूतिसम्पन्न आत्मवियोग के प्रदर्शन की है.—

के दियेछे हेनो शाप केनो व्यवधान।
केनो ऊर्ध्व चेये काँदे रुद्ध मनोरथ।
केनो प्रेम आपनार नाहि पाय पथ।
सशरीरे कोन् नर गेछे सेइखाने।
मानससरसी तीरे विरह-शयाने।

अर्थात् किसने ऐसा शाप दिया, दो हृदयों के बीच में क्यों ऐसा व्यवधान डाला जाता है। बाधा-प्राप्त मनोरथ ऊपर की ओर देखकर क्यों रोता है। प्रेम अपना पथ क्यों नहीं पाता। सशरीर कौन नर वहीं मान-ससरसी-के तट पर विरह-शहन में गया है। सम्भवतः इसी लिए महाकवि कालिदास का यक्ष प्रिया की प्रतिकृति का दिवा स्वप्न देखता है और पार्वती का 'भावैक रसमन' स्वप्निल अवस्था के अन्तर्गत असत्य कण्ठ में बाहु-बन्धन अर्पित करता है:—

'त्रिभागशेषासु निशासु च क्षणं,
निमील्य नेत्रे सहसा व्यबुध्यत।
क्व नीलकण्ठ! व्रजसीत्यलक्ष्यवाक्
असत्य कण्ठार्पित बाहु बन्धना॥
(कुमार सम्भवम्)

अर्थात्, विरहवेदना से पीड़ित होने से पार्वती को रात में नींद नहीं आती। रात के अन्तिम पहर मे यदि आँख लगती भी तो वे स्वप्नावस्था मे:—

'हे प्रिय शकर! तुम कहाँ जाते हो, ऐसा कहकर चिल्ला उठती हैं।'

इसके अतिरिक्त पुरुष जाति के सदय आर्त्तनाद का चित्रण महाकवि कालिदास ने आज के वाष्प-गद्गद-हृदय में समाविष्ट हो कर किया है। राहुग्रस्त चन्द्रमा की चाँदनी की तरह निमीलित इन्दुमती के निष्प्राण प्राण के लिए अज रोये थे अथवा कालिदास दिव्य? प्रसून-ग्रथित मनोमोहिनी माला के प्रहार से सुकोमल इन्दुमती के विवर्ण स्वरूप के लिए अज रोये थे अथवा कालिदास? प्रियतमा के गतचेतन देह के साथ साथ-साथ धरा-

शायी होकर अज रोये थे अथवा कालिदास ? दीपशिखा के निर्वाण के साथ करुण कण्ठ से दग्ध हृदय अज रोये थे अथवा कालिदास ? प्रणयिनी के चिर वियोग में स्वाभाविक धैर्य को खोकर वाष्प गद्-गद् स्वर से विलाप करते हुए अज रोये थे अथवा कालिदास ? दिव्य-कुसुम माला के प्रति दृष्टिपात करते डबडबाई आखों से अज रोये थे अथवा कालिदास ? नरोत्तम-महिषी इन्दुमती की सुजातअङ्गयष्टि पर महर्षि नारद की जीवन संहारक माला को बार-बार देखकर उद्भ्रान्त प्रेम में अज रोये थे अथवा कालिदास—

'स्रगिय यदि जीवितापहा हृदये किं निहिता न हन्ति माम्'

राजभवन में निभृत शयनकक्ष में वृन्तच्युत मुकुल की तरह लुण्ठित उर्मिला के लिए ऋषिकवि वाल्मीकि नहीं, कविगुरु रवीन्द्र रोये हैं। सीता देवी के छाया तल में अवगुंठित उर्मिला के लिए भवभूति नहीं, कवीन्द्र रवीन्द्र रोये हैं। परन्तु पतिगृहगामिनी शकुन्तला को तपोवन से विदा करते हुए महर्षि कण्व रोये हैं अथवा कालिदास ? शकुन्तला के सुख सौन्दर्य एव गौरव गरिमा को समृद्ध करने वाली तपस्विनी प्रियवदा और अनुसूया के साथ तपोवन में कालिदास रोये हैं, परन्तु राजसभा में दुष्यन्त सम्भवतः इन सखियों के बिना शकुन्तला को पहचान नहीं पा रहा है, इस लिए कविगुरु रवीन्द्र रोये हैं। शकुन्तला को विदा करने के उपरात प्रियवदा और अनुसूया के अभिनय नहीं हुए, इस लिए कविगुरु रवीन्द्र रोये हैं। महर्षि वाल्मीकि भवभूति एव कालिदास की पुञ्जीभूत भावुकता के प्रति कवीन्द्र रवीन्द्र का आत्मीय भाव है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का हृदय जितना उपर्युक्त देवियों के लिए करुणा-पूर्ण है उतना ही स्वर्गीय नर्त्तकी 'उर्वशी' के लिए भावपूर्ण—

मधुमत्तभृङ्ग-सम मुग्ध कवि फिरे लुब्ध चिते उद्दाम संगीते।
नूपुर गुञ्जरि जाओ आकुल-अंचला विद्युच्चंचला (उर्वशी, 'चित्र')

रवीन्द्र का कान्ताप्रेम करुणारस से निषिक्त होकर भागवत रति में समाधिस्थ हो जाता है। कवि की गीताजलि इसका प्रमाण है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की ऋतम्भर आत्मा ने सम्भवः इसी लिए भगवत्प्रेम की सम्भावित कल्पना की है:—

कोथाय सोनार नूपुर बाजे बूझि आमार हियार माझे,
सकल भावे सकल काजे पाषाण-गाला सुधा ढेले—
नयन भुलानो एले।.....(गीताञ्जलि)

अर्थात्, सोने के नूपुर कहाँ बज रहे हैं, शायद हमारे हृदय में, सकल भाव एवं सकल कर्म में पत्थरों को भी पिघला देने वाली सुधा वृष्टि करने वाले—(हमारे) नयनों को भुलाने वाले आये।' ससार सुप्तिमग्न है; आकाश मे अन्धकार छाया हुआ है; ऐसे समय गुरुदेव की हृदय तन्त्री को कौन इस प्रकार झंकृत कर रहा है। नयनो की नींद खुल गई, उठकर देखा, कोई तो दिखाई नहीं देता। खुली आँखें उसे देखती रहती हैं, परन्तु उसका साक्षात्कार नहीं होता है।

विश्व यखन निद्रा मगन, गगन अन्धकार।
के देय आमार वीनार तारे एमन झङ्कार।
गुञ्जरिया गुञ्जरिया प्राण उठिलो पूरे,
जानि ने कोन् विपुल वाणी बाजे व्याकुल सुरे।
कोन् वेदनाय बूझी ना रे हृदय भरा अश्रुभारे,
परिये दिते चाइ काहारे आपन कण्ठहार (गीताञ्जलि)

महाकवि कालिदास पुरातन भारतीय सभ्यता के कवि हैं और कवीन्द्र रवीन्द्र नूतन भारतीय सभ्यता के कवि हैं। दोनों के काव्य में पर्याप्त प्रभेद होने पर भी दोनो के अन्तर्निहित काव्यधर्म की चेतना एक है। दोनो की शैलियाँ भिन्न हैं। परन्तु दोनों का आदर्श प्रेम मातृत्व की ललक एव दाम्पत्य प्रणय की चंचलता, आशा एवं आकांक्षा के प्रति सवेदना शील है। ये दोनों कवि भारतीय काव्य के एवं भारतीय संस्कृति के अभिनेता हैं अतएव इनके काव्य की प्रदक्षिणा निखिल विश्व कोटि-कोटि शरद् ऋतुओं तक शान्ति और मैत्री का पाठ पढ़ाती रहेगी।

× × × ×



रवीन्द्रकाव्य में सत्यं, शिवं, सुन्दरम्

गुरुदेव रवीन्द्र का काव्य जीवन की द्विधा और द्वन्द्व में सामञ्जस्य स्थापित करता है। वे मानव और ब्रह्म के कवि हैं। अतएव उनकी भाव-धाराओं की द्विधा के अन्तर्गत प्रकृति और पुरुष का संगम होता है। प्रकृति मात्र पुरुष की प्रिय सहचरी है। फलतः प्रकृति की लीला में ब्रह्म का आनन्द समाहित है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के काव्य की मीमांसा करने वाले विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। लोग अपनी अपनी रुचिवैचित्र्य एवं कालभेद के अनुसार रवीन्द्र काव्य की विवेचना करते हैं। लोगों के जीवन की अनुभूतियाँ प्राय. एकागी हुआ करती हैं, क्योंकि मनुष्य अपना एक खास तरह का वातावरण बना लेता है और इस वातावरण में रहकर उसके सस्कार पल कर प्रौढता प्राप्त करते हैं। मानव मस्तिष्क के सस्कार ससार के प्रति अपनी एकागी दृष्टिभगिमा से विमुख नहीं हो पाते। धर्मगत और जातिगत सस्कारों से तो मानव को कुछ मुक्ति मिली है, पर राजनैतिक सस्कार भेड़ियों की तरह अपने अपने पेट भरने के लिए मुँह फैलाये हैं। आधुनिक राजनीति का यह वितण्डावाद, विज्ञान की इतनी समुन्नति होने पर भी एक दूसरे मानव को परस्पर समझने में बाधक है। मानव प्रकृति को समझने के लिए मनोविज्ञानवेत्ताओं एव शिक्षाशास्त्रियों ने प्रयत्न किए हैं, पर इतनी विशाल मानवता के जागरण के लिए शिक्षकों का अभाव राष्ट्रों की वृकोदर वृत्ति का द्योतक है। आज का ज्ञान विज्ञानमण्डित समाज बड़े उत्साह से प्रगति करता है, पर प्रगति होती है अपनी-अपनी स्वार्थ-सिद्धि की। सद्‌गुणों की शिक्षा देने के लिए अभी तक शायद कोई सामूहिक योजना नहीं बनी। हमारे विद्यालयों से निकलने वाले छात्रों के

समक्ष काञ्चन और कामिनी की समस्यायें पिशाचिनी सी खून चूसने को मचल रही हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ कवि, दार्शनिक एव शिक्षाशास्त्री थे। अपने समाज के अभ्युत्थान के लिए उन्होंने विश्वभारती जैसी विश्वविख्यात सस्था की स्थापना की थी। सत्य शिवं सुन्दरम् इस सस्था का मूलमत्र है। सच्चिदानन्द के विस्तृत परिवार में रहकर मानव उदार एव विश्व-बन्धु बनकर यदि जीवन व्यतीत करता है, तो समझना चाहिए कि विश्व का सौभाग्य-सितारा उदीयमान है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का काव्य सत्यं शिव सुन्दरम् से प्राणवान हुआ है। ये तीन शब्द रवीन्द्रकाव्य मे पार्वती-परमेश्वर की तरह व्याप्त है। विश्व जनीन कल्याण एव बन्धुत्व के लिए कविगुरु रवीन्द्र ने मा भारती के मन्दिर को अपने स्तव-गान से प्रतिध्वनित किया है। ये तीन शब्द विश्व-काव्य में इतने घुल-मिल गये हैं कि इनके आदिस्रोत का पता लगाना दुष्कर प्रतीत होता है। विश्व ब्रह्माण्ड के पदार्थों की उत्पत्ति के बाद ही उनका नामकरणसस्कार होता है; प्रत्येक वस्तु के गुण-भाव एव दशा को देखकर ही उनकी सत्ता को महत्ता दी जाती है, परन्तु अन्वेषण-वृत्ति पहले से ही बलवती रहती है।

सृष्टि के पदार्थों की सत्ता एव नामकरणसस्कारों को अगीकार करने से पूर्व प्राणी मे जिज्ञासावृत्ति रहती है। बालक ज्यों ज्यों भाषा सीखता है, त्यों-त्यों उसकी उत्सुकता तीव्रतर होती जाती है। वह उत्तरोत्तर 'क्या ? कहाँ ? कैसे ?' के प्रश्नों की सीढी पर पैर रखता हुआ नवीनता की ओर बढता है। मानव मनोविकास का प्रधान कारण, मनुष्य के ज्ञानवर्धन की प्रबलतम प्रेरणा; जिज्ञासावृत्ति है। इसी जिज्ञासा-वृत्ति से प्रेरित होकर काव्य में सत्य शिव सुन्दरम् की गवेषणा हुई है।

भारत और यूनान के तत्त्ववेत्ता ऋषियों ने विश्व को मगलमय बनाने के लिए काव्य की मीमासा की; तदुपरान्त उसका एक विशिष्ट उद्देश्य एव आदर्श निश्चित किया। अफलातून ने काव्य को सुसंस्कृत करने के लिए

The true, the good, the beautiful सज्ञा दी है। भारत के लाक्षणिक विद्वानों का काव्यविषयक उद्देश्य तो व्यावहारिक दृष्टि से बहुत कुछ है, परन्तु तात्त्विक दृष्टि से आनन्दमय, रसस्वरूप ही है। लीला के लिए लीला चाहिए, रस के लिए रस चाहिए। इस लिए रस और आनन्द के लिए आनन्द और रस का स्वरूप चाहिए। किसी सुन्दरी के सौन्दर्य में रस की कल्पना की जा सकती है, फलस्वरूप आनन्द की अनुभूति भी जाग सकती है, परन्तु जब तक सुन्दरी सुन्दरी नहीं, जब तक वह रसनिषिक्त नहीं, जब तक वह आनन्द से आनन्दित नहीं, तब तक सौन्दर्य से आनन्दोपलब्धि करना, रस की कल्पना से आनन्दित होना एव आनन्द-स्वरूप से आनन्दवान होना, नितात भ्रमसकुल है। ससार के सब चमकने वाले पदार्थ रत्न नहीं हो सकते, ससार की सभी सुन्दरियाँ आनन्दमय नहीं हो सकतीं, इसी प्रकार ससार का सारा काव्य भी आनन्ददायक नहीं हो सकता। देश काल एव रुचिवैचित्र्य के सस्कार अपनी तृप्ति का मार्ग ढूँढ लेते हैं। भारत में कदाचित् सत्य शिव सुन्दरम् की सज्ञा न दी गई हो, परन्तु वस्तु का अभाव नहीं है। व्यास ने नन्दनन्दन कृष्ण को रस और आनन्द का चरमोत्कर्ष एव चरम विकास माना है। वे रस और आनन्द का बीज-कोश हैं। दूसरे शब्दों में यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वे स्वय रस और आनन्द ही हैं। उपनिषद् मे व्यास के 'हरि' को ब्रह्मसंज्ञा से अभिहित किया है। फलतः उसकी उपासना का प्रतिफल क्या होता है, इसकी ओर विशेष रूप से मन्त्रद्रष्टा ऋषि ने मानवात्मा का ध्यान आकर्षित किया है.—

रसो वै सः। रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।
को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेव आकाश आनन्दो न स्यात्।
(तैत्तिरीय-२-७)

लीला, रास और आनन्द की कल्पना है। जो भक्त के लिए गम्य और तार्किक के लिए अगम्य हैं। तर्क से अनुसन्धान करने वाले को वे

रहस्यमय दिखाई देंगे और प्रेमस्निग्ध भावुक को आनन्दमय। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने जीवन-देवता को भाव-विभोर होकर वरण किया है। भक्त और भगवान् प्रणैकबन्धु हैं। कवि का हृदय कितना भावपूर्ण है। वह मुखमण्डल की दृष्टिभगिमा को तो देखता ही है; साथ ही अन्तर्यामी होने से हृदय के कोमल से कोमलतम भावों मे प्रविष्ट होता है। इसी लिए ईशोपनिषद् में आत्मा को 'कवि' और मनीषी सज्ञायें दी गई हैं। कवि और मनीषी ही रस और भाव का आस्वादन करते हैं। मृत्पिण्ड बुद्धि जन अपना अधिक से अधिक समय पर निन्दा एव पर अपवाद मे व्यतीत करके समाज में ईर्षा-द्वेष की सडायँध पैदा करते हैं, भक्त और भावुक समस्त संसार के लोगों में प्रेम-करुणा एव पर दुःखकातरता के जाग्रत भावों की शीतल सुगध विकीर्ण करते हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का काव्य भावुक भक्त की आत्मा का भावात्मक प्रेमोन्माद है। भक्त अपने प्रिय के केलि कलाप मे अपने अन्तरंग प्रेम का भाव प्रकाशित करता है। फलतः सत्यं, शिव सुन्दर की उन्मीलित भावना मूर्तिमान् हो जाती है:—

प्रेम प्राणे गाने गन्धे आलोके पुलके
प्लावित करिया निखिल द्युलोके भूलोके
तोमार अमल अमृत पड़िछे झरिया।
दिके दिके आजि टूटिया सकल बन्ध
मूरति धरिया जागिया उठे आनन्द;
जीवन उठिलो निविड़ सुधाय भरिया॥

(गीताञ्जलि)

अर्थात् "तुम्हारा अमल अमृत, प्रेम को, प्राणों को, गान को, गन्ध को तथा आलोक और पुलक को प्लावित करके निखिल द्युलोक और भू लोक मे बरसा पड़ रहा है। प्रत्येक दिशा के सब बन्धन आज टूट गये हैं, आनन्द मूर्तिमान् हो कर जाग उठा है; जीवन प्रगाढ़ सुधा से भर उठा है।"

नित्य नवीन रंगों की छाया में मानव-हृदय सुन्दर से सुन्दरतर हो उठता है। मन प्रिय के आलाप में पुलकाकुल कण्ठ से पूछता है:—

"ओहे अन्तरतम
मिटे छे कि तव सकल तियास, आसि अन्तरे मम"

अर्थात् 'हे अन्तरतम ! मेरे हृदय में आकर तुम्हारी सारी प्यास क्या बुझी है !' इसके अतिरिक्त कवि की जिज्ञासा बढ़ती जाती है। वह आनन्द-विह्वल होकर पूछता है.—

हे मोर देवता भरिया ए देह प्राण
की अमृत तुमि चाहो करिवारे पान।

'हे ! मेरे जीवनदेवता, इस देह प्राण को भरकर क्या अमृत तुम पान करना चाहते हो।' रवीन्द्रनाथ के काव्य में आनन्द करुणरस निषिक्त है। किन्तु कवि की करुणा हताश एव अभागी के नैराश्य से लिप्त नहीं है। यद्यपि कवि भावावेश में विह्वल होकर अपनी शक्ति को भूल जाता है, परन्तु यह उसके आनन्दातिरेक का प्रबल माव है। कवि रीवन्द्र की तरह भावुक कवि ससार में इने गिने हैं। कवि की आत्मा आनन्द और विषाद से व्याप्त होती है यह मानव जीवन का सत्य है। इस सत्य का परिचय कवि रवीन्द्र के 'सन्ध्या सगीत' से लेकर 'मानसी' तक की कविताओं से प्राप्त होता है। विषाद की छाया मेघाच्छन्न रात्रि की तरह कवि भूमि में छा गई है। परन्तु कवि रवीन्द्र उपनिषद् के पुत्र ऋषि हैं।

रवीन्द्रकाव्य के प्रसिद्ध आलोचक श्री प्रमथनाथ विशी को 'सोनार तरी' से 'नैवेद्य' के पूर्व तक के काव्य को आनन्द रस का काव्य मानने में आपत्ति है। उनका विचार है कि 'वग-साहित्य की मूल रागिनी' विषाद की है।, वे गीति काव्य का प्रधान उत्स विषाद में मानते हैं। उन्होंने इसे प्रमाणित करने के लिए वैष्णव कवियों के विरह-रस की नजीर पेश की है। इसके अलावा उन्होंने वग-प्रान्त की आबहवा का काव्य पर पर्याप्त प्रभाव परिलक्षित किया है। "बगाल की प्रकृति में जो विशाल वैराग्य है, वह विशेष करके बगाल के समतल मैदानों के कारण उदार नदी अपार आकाश में आत्मसमर्पण करती हैं। यह अपार सीमा हीनता मनुष्य के चित्त में विषाद

भाव भर देती है। बगला का काव्य उदासी काव्य है। यह उदासी नता, वैष्णव काव्य मे, कोर्त्तन के सुर मे, बाउल के गान में सर्वत्र; रवीन्द्र-नाथ के काव्य मे एक भिन्न रूप से, आत्म-प्रकाश करती है।" प्रसिद्ध विद्वान् श्री प्रमथ विशी रवीन्द्रनाथ के प्रान्त के रहने वाले हैं और उनकी मातृ-भाषा गुरुदेव की मातृभाषा है। अतएव उनका कथन पर्याप्त प्रामाणिक हो सकता है। परन्तु मैं (लेखक) उस प्रान्त से काफी दूर राम-कृष्ण की जन्मभूमि का रहने वाला हिन्दीभाषी हूँ, अतएव मेरा कथन पूर्णतः प्रामाणिक होगा, मैं इसका कभी भी दावा नहीं कर सकता। हाँ, मैंने जिस लगन और अनुराग से सूर-तुलसी-मीरा और जयशकर 'प्रसाद' के काव्य को पढा है, उतनी ही लगन और अनुराग से मैंने गुरुदेव रवीन्द्र-नाथ के काव्य का अध्ययन किया है।

वंग-साहित्य की मूलरागिनी विषाद की है। इसकी छाया रवीन्द्रकाव्य पर पड़ी है, यह एक विचारणीय समस्या है। काव्य में नाना प्रकारके भावों का चित्रण होता है। किन्तु एक भावप्रधान रूप से स्थायी रहता है। तात्पर्य यह है कि कवि के काव्य मे एक रस प्रमुख रहता है और शेष गौण। कवि कितने ही प्रकार के चित्रों का चित्रण क्यों न करे, उसके प्राणो को उसका स्थायी भाव व्याप्त रखता है। यह स्थायी भाव (सेन्टीमेन्ट) कवि के मानस को आवेष्ठित किये रहता है। वह अपने को उसमे मुक्त नहीं कर पाता। बहुत कुछ रवीन्द्रकाव्य के विषय में भी यही प्रतीति है। गुरुदेव की काव्य प्रणाली आनन्द और उल्लास की भावधारा प्रवाहित करती है। आनन्द और उल्लास उनकी कविता का बीजकाश है। घनीभूत विषाद के चित्रण में भी गुरुदेव के आनन्द का स्थायी भाव सन्निविष्ट रहता है। वैष्णव काव्यमे श्री राधा प्रियजन की निर्ममता से आहत होकर आर्त्तनाद करती हैं:—

सुखेर लागिया—ए घर बाँधिनू अनले पुड़िया गेलो,
अमिय सागरे सिनान करिते सकलिगरल भेलो।

अर्थात् 'सुख के लिए यह घर छाया, किन्तु आग लग गई, जल गया, अमृत के सागर में स्नान करने के लिए गई किन्तु वह सब विष हो गया।' सुख से सज्जित घर में आग लगना एव अमृत के सागर का जहर हो जाना कवि की भावव्यञ्जना की तत्परता है। वह प्रेम के भाव को तीव्र से तीव्रतम एव गम्भीर से गम्भीरतम दिखाना चाहता है। इसके मूल में प्रेम (रति) स्थायी भाव है। अतएव प्रेम की गहराई मानव-चित्त की विरहानुभूति में है। सुख दु.ख, हर्ष विषाद एव जीवन-मरण का चित्रण काव्य के रगमच पर अभिनय की तरह होता है। वस्तुतः पुष्टि स्थायी भाव की होती है और मानवचित्त में आसक्ति का भाव परिपुष्ट होता है। दुःख, विषाद और मरण की अनुभूति से जब कवि पाठकों को परिचित कराता है तो यह न समझना चाहिए कि कवि मरण के गीत गाता है अथवा विषाद में घुल घुल कर मर रहा है, बल्कि वह दु'ख, विषाद और मरण की सत्योपलब्धि से आनन्दानुभूति को बलवती बना रहा है। रावण के दुष्कर्मों से राम के सद्गुणों का रूप निखरता है, विरह की तपन से मिलन की लगन लगती है, यह वैष्णव काव्य का मर्म है। चण्डीदास की॰ राधा श्री कृष्ण के चरणों में अपनी देह मन प्राण समर्पित करके कहती हैं:—

> बॅधू की आर बोलिबो आमि
> जीवने मरणे जनमे जनमे
> प्राणनाथ हाइओ तुमि

'हे प्रियतम! जीवन मरण में तथा जन्म जन्मान्तर तक तुम मेरे प्राणनाथ होओ और मैं तुम्हारे चरणों की दासी होऊँ। इस कथन में कवि ने अपने स्थायी भाव (भक्ति) की प्रतिष्ठा की है। ऐसी परिस्थिति में भागवतरति का भाव मधुप्रेमी भक्तात्मा को भागवतरसनिषिक्त कर देता है।

विषाद की छाया की कल्पना सरलतया की जा सकती है। क्योंकि विषाद मानवजीवन को चारों ओर से घेरे हुए है, परन्तु आनन्द की उल्लास पूर्ण कल्पना करना सरल व्यापार नहीं। आनन्द, सत्य शिव सुन्दरम् से

व्यापृत हो; वासना से विषाक्त न हुआ हो; बल्कि वासना की सुधा से सिक्त हो; मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के उन्मीलन का विषय है। कविगुरु रवीन्द्र आनन्द के कवि हैं। वे उपनिषदों के मन्त्रद्रष्टा ऋषियों के आध्यात्मिक वशधर हैं। अतएव उनके काव्य मे सत्य शिवं सुन्दरम् की समष्टि मे आनन्दोपलब्धि की अभिव्यक्ति होना स्वाभाविक्त है। कवि जाग्रत सुपुप्त एव तुरीय अवस्था में सर्वदा अपने स्थायी भाव से प्रेरणा एवं चेतना पाता रहता है। वंग प्रान्त की शस्यश्यामला, सुजला सुफला वसुन्धरा का परिवेश वैराग्य उदासी एव उदासीनता का स्वर गुञ्जित करे; फलस्वरूप प्राण विषाद से वातुल हो जायें; विषाद की द्विगुणित छाया मेघाच्छन्न रात्रि की तरह काव्यभूमि को आवेष्टित करे, अनर्थक विवाद है। हाँ, पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए भागवतधर्मानुगामी चैतन्यदेव वैराग्य लेते हैं, कल्याणी मा काली की साधना करने के लिए रामकृष्ण परमहंस उदासी होते है। परन्तु इन महात्माओं का वैराग्य और उदासीनता अकर्मण्यता नहीं है बल्कि सामूहिक विप्लव के लिए एक योजना तैयार करने की साधना है। वग प्रान्त की भूमि भागीरथी के उभयकूलों से प्रगति और क्रान्ति की चेतना प्राप्त करती रही है। 'वन्दे मातरम्' के मन्त्रद्रष्टा ऋषि वकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय ने एव 'जन मन-गण अधिनायक' का स्तवगान करने वाले गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ने राष्ट्र की एव विश्व की सर्वांगीण समुन्नति के लिए मन्त्रोच्चारण किया है। आनन्द की प्रतिष्ठा के लिए कविगुरु रवीन्द्र समाज मे, राष्ट्र मे यहाँ तक कि विश्व में, सत्यं शिव सुन्दरम् की शखध्वनि प्रतिध्वनित करते हैं। वे विश्वबन्धुत्व के उपासक हैं। उनका काव्य मानवजीवन के सत्य को शिव एव सुन्दरम् रूप प्रदान करता है।

यौवनमदमत्त सुन्दरी के अभिसार में सत्यं सुन्दरम् के साथ शिव का जाग्रत रूप प्रस्तुत करना कविगुरु रवीन्द्र की सधी लेखनी की खूबी है। संन्यासी उपगुप्त और यौवनमदमत्त नारी के अभिसार में उपर्युक्त सत्य मूर्त्त हो उठा है। सुन्दरम् शरीर मे नव तारुण्य की रेखायें उभारता है

और शिव प्रेम, करुणा, दया, दाक्षिण्य आदि भावों से प्राण-प्रतिष्ठा करता है।'अभिसार' में तथा गुरुदेव की 'विजयिनी' में सत्य, शिव, सुन्दरम् का जैसा सजीव चित्रण हुआ है, वैसा ससार के साहित्य में दुर्लभ है। 'अभिसार' की अन्तिम पक्तियाँ हैं, सन्यासी उपगुप्त अपने बचनानुसार उपयुक्त अवसर पर अभिसार करने आया है। यौवन के प्लावन में सयम नियम के सस्कार क्षण मात्र में समाप्त हो जाते हैं, मर्यादा का बाँध टूट जाता है। बाण भट्ट के शब्दों में—'शास्त्र प्रक्षालनाऽपि बुद्धि॰ कालुष्य-मुपयाति'—धर्मशास्त्रों के जल से निर्मल की हुई बुद्धि मे भी विकार उत्पन्न हो जाता है। यह जीवन का महान् सत्य है। फिर तरुण सन्यासी और वासवदत्ता के अभिसार में मर्यादा की रक्षा किस रूप में हुई? यह कुतूहली प्रश्न मानवात्मा को उत्सुक बना देता है। कविगुरु रवीन्द्र भारत-वर्ष के पुण्य तीर्थों में अवगाहन कर चुके हैं। भारतवर्ष विभिन्न सभ्यताओं एव सस्कृतियों का सगमस्थल तथा धर्मक्षेत्र है। गुरुदेव सन्धियुग के प्रवर्त्तक कवि हैं। भारतीय सस्कृति पाश्चात्य सस्कृति से पूर्णतः अभिभूत हो चुकी थी, उस समय गुरुदेव ने पुण्यतीर्थ भारतवर्ष के सगम पर खड़े होकर वेणुवादन किया था। गोपिकाओं की तरह विश्व की अगणित आत्मायें भावविह्वल हो गई थीं। यह तो गुरुदेव के जीवनकाल की वार्ता है। ससार परिवर्तनशील है। जो वस्तु आज नवीन है, वह कल पुरानी हो जायगी। जो आज जवान है वह कल बूढ़ा हो जायगा। इसी का नाम जीवन और मरण का चक्र है। परन्तु काव्य में ऐसे तत्त्व विद्यमान रहते हैं जो नित्य नवीन, चिरयुवा एव चिरञ्जीवी होते हैं। व्यास, वाल्मीकि और कालिदास की काव्यपरम्परा में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का स्थान लब्धप्रतिष्ठित है। भारतीय काव्य विश्व के समक्ष शान्ति एव मैत्री प्रेम एव करुणा का आदर्श प्रस्तुत करता है। 'अभिसार' में प्रेम करुणा एव दुःखकातरता से ओत-प्रोत है। कविगुरु रवीन्द्र नर नारियों के जीवन में प्रेम और सौन्दर्य का उफनाता स्रोत खोजते हैं। सुन्दर चीजें जादू डाल देती हैं। भावुक लुट

जाता है। परन्तु कवि का विमोहित होकर लुट जाना भावुकता एवं पर दुःख-कातरता का आदर्श है। मानवात्मा के नैतिक एवं चारित्रिक उत्कर्ष का मानदण्ड कवि का काव्य होता है। कवि समाज के गुह्य एव गोप्य रहस्यों का उन्मीलन करता है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के काव्य में ऐसे तत्त्व पर्याप्त हैं जो नित्य नवीन और चिरञ्जीवी हैं तथा प्राणों के गोप्य एव गुह्य रहस्यों का उद्घाटन करते हैं।

'अभिसार' की निम्नलिखित पंक्तियों मे काव्य और संगीत का सौन्दर्य कवि की भावुकता का आदर्श है:—

नगरीर नटी चले अभिसारे यौवन मदे मत्ता।
अंगे आँचल सुनील वरण, रूनु झुनु रवे बाजे आभरण;

सन्यासी गाये पड़िते चरण थामिलो वासवदत्ता;
सौम्य सहास तरुण बयानकरुणा किरणे विकच नयान।

यौवन के मद से मत्त नगर की नटी अभिसार करने चली है; शरीर पर सुन्दर नीले रग का परिधान सुशोभित है, आभूषण रुनुक झुनुक शब्द करते हुए बज रहे हैं; संन्यासी के शरीर पर पैर पड़ते ही वासवदत्ता रुक गई,.. यौवनप्लावित नव नटी मे कोमल नारीत्व की भाव-भङ्गिमा की व्यञ्जना की गई है। जगत्‌नर-नारीमय है; अतः गुरुदेव ने दोनों पक्षों का समान रूप से चित्रण किया है। संन्यासी (नर) और नारी वासवदत्ता में प्रेम और करुणा समान रूप से व्यञ्जित है।

निद्रारूप रोग से ग्रसित रूपसी का गौर शरीर काला पड़ गया है। शीतला रोग की फुंसियों ने उसकी कोमल कुन्दन के रग सी त्वचा को अत्यन्त घृणित बना दिया है। गुरुदेव का भावुक हृदय, ऐसी परिस्थित होने पर भी, करुणा पूर्ण होकर नारी की पूजा करता है। भारतीय काव्य मे ऐसी सृष्टि अभूत पूर्व है। गुरुदेव के विशाल काव्य मे उनके अनेक रूप हैं, दार्शनिक, राजनीतिक, समाजवैज्ञानिक, शिक्षाशास्त्रीय एवं औपन्यासिक।

परन्तु सर्वोपरि वे ऋषि कवि हैं। उनके काव्य और संगीत की धाराओं में सत्यं, शिव, सुन्दर उमड़ने लगता है:—

चल चप लार चकित चमके
करिछे चरण विचरण;
कोथा चम्पक आभरण।
मनोमन्दिर सुन्दरी
मणि मञ्जरी गुञ्जरी

सुकुमारता की गति कितनी सगीतात्मक होती है, इसका अनुरणन उपर्युक्त कविता की सुकोमल पक्तियों से होता है। कवि रवीन्द्र मानव जीवन के सत्यों का काव्य की भाषा में निरूपण करते हैं। उनके काव्य के दुःख सुख तथा विरह मिलन में शिवं, सुन्दर का आनन्दमय रूप देखा जा सकता है:—

'विरह विधुर नयन सलिले, मिलन मधुर लाजे'

यात्रापथ कटकाकीर्ण होने पर भी गति अवरुद्ध नहीं करनी है। गति को रुद्ध कर देने का अर्थ है आत्मा के नित्य नवीन एवं विशुद्ध शिवं एवं सुन्दर का उन्मूलन करना, अतएव प्रगति के पथ पर कितनी ही बाधायें एव विषाद विघ्न क्यों न आयें, बढ़े हैं चरण तो बढ़े ही रहेंगे। "परिशेषेर" 'दुर्दिने' कविता की पंक्तियों में विषाद एव दु.समय का वर्णन कवि ने निम्नलिखित प्रकार से किया है:—

आवर्जनाय अचल पुंजे
यात्रार पथ रुद्ध,
रिक्त कुसुम शुष्क कुजे
वैशाख रहे क्रुद्ध,
मान मोरे कय, "ए किछुइ नय,
मिथ्ये ए सब मिथ्ये,
आपनाय भूले गाओ प्राण खुले
नाचो निखिलेर नृत्ये।"

प्रगति पथ के विघ्न मानव के द्रुतगामी चरणों को रोक नहीं सकते; क्योंकि सीमित मानव में असीम शक्ति है। गुरुदेव के समक्ष 'आनन्द' पारमार्थिक तत्त्व है। उसकी उपलब्धि के लिए वे विश्व ब्रह्माण्ड से विघ्न और विषाद को उन्मूलित करना चाहते है। उन्हें अपने संसार को सत्य एवं शिवं सुन्दर से भावाविष्ट करना अभीष्ट है। गुरुदेव के मानस में 'आनन्द' परम तत्त्व है। यह काव्य के सत्य शिवं सुन्दर में प्रकारान्तर से प्रस्फुटित हुआ है। इसी लिए कविगुरु रवीन्द्र भावोल्लास से घोषणा करते हैं:—

'अपने को भूलकर दिल खोलकर समुदय नृत्य में नाचो।'

कवि रवीन्द्र मानवात्मा का निकट से परिचय प्राप्त करके असीम शक्ति-सम्पन्न, भक्तिरससिन्धु की प्रीति में आसक्त हो जाते हैं:—

"फागुन की रात है। घर मे प्रदीप जल रहा है, दक्षिण हवा के झकोरे छाती पर लग रहे हैं, यह मुखरा सारिका सोने के पिंजड़े मे सो रही है, द्वार के सामने द्वारपाल भी सो रहा है। सोहागघर धूप के धुयें से धूसर हो उठा है। अगुरु की गन्ध से सारा शरीर व्याकुल है, मोरपंखी कंचुकी मैंने पहन ली है, दुर्वा के समान उस श्यामल वक्षस्थल पर आँचल खींच कर विजन राजमार्ग के उस पर देख रही हूँ। धूल में उतर कर खिड़की के नीचे बैठ गई हूँ। अकेली बैठी तीन पहर तक उदास भाव से गान गाती रही हूँ—हताश पथिक, वह मैं ही तो थी, वही तो मैं थी!"

—'भ्रष्ट लग्न' से अनूदित

धार्मिक सत्य में शिव की प्रतिष्ठा करता है। वह लक्ष्मी गणेश का मांगलिक घटों से अभिषेक करता है। लक्ष्मी और गणेश शिव और सुन्दर का स्वरूप हैं। गुरुदेव के काव्य में धार्मिक और काव्यात्मक सत्यं, शिव एवं सुन्दरं रूप में प्रतिफलित हुए हैं। कवि मानव जीवन की मूल प्रवृत्तियों को शिवं एव सुन्दरं रूप प्रदान करता है। निसर्ग सौन्दर्य का श्रेष्ठ रूप वसंत लक्ष्मी मे विद्यमान है और धार्मिक शिव का सुन्दर रूप शरद लक्ष्मी मे; यथा:—

(वसत लक्ष्मी) वसंत दिनेर कतो स्पन्दने कम्पने
निश्वासे उच्छ्वासे भाषे आभासे गुञ्जने
चमके झलके,

× × ×

(शरद्-लक्ष्मी) मातार कण्ठे शेफालि माल्य
गन्धे भरिछे अवनी।
जलहारा मेघ आँचले खचित
शुभ्र येन से नवनी।

वसत-लक्ष्मी और शरद्-लक्ष्मी के सौन्दर्यवर्णन में सत्य, शिव, सुन्दर की उसी प्रकार से अवतारणा की गई है, जिस प्रकार महाकवि कालिदास के द्वारा हिमालय प्रदेश में नटराज शकर के साथ सर्वमगला गौरी के सम्मिलन के लिए वसत की। नटराज शिव में नाट्य के साथ कल्याण की विभूति है और सर्वमगला गौरी मे मागलिक नारीत्व के साथ रूप की साज-सज्जा। रवीन्द्र साहित्य के शिव, सुन्दर प्रेम और करुणा के अवगुठन से झाँकते ही नहीं, भरत नाट्यम् की सी भावमुद्रायें प्रस्तुत करते हैं। उनकी व्यञ्जना भाव जगत् की सम्पत्ति है। शब्द, अर्थ और ध्वनि का अपनी कल्पना एव प्रतिभा से सामञ्जस्य करके उन्होंने विश्व में असीम सौन्दर्य लक्ष्मी की प्रतिष्ठा की है। रूप, रस, गन्ध के अन्तर्गत कल्पना की प्रतिमायें भुवनमोहिनी सुन्दरी का नग्न सौन्दर्य उपस्थित करके जगत् को अपना दास बना लेती हैं। प्रेम में नारी ने हमेशा पुरुष को पराजित किया है। पुरुष अपनी कठोरता को नारी के समक्ष उत्सर्ग करके उसका हृदयेश्वर एव कान्त बनने की चेष्टा करता है। गुरुदेव इस सत्य को काव्य की भाषा में बड़ी सुन्दरता से शिव एव सुन्दर रूप प्रदान करते हैं:—

आदिम वसंत प्राते उठेछिले, मन्थित सागरे
डान हाते सुधापात्र विषभाण्ड लये वामकरे,

तरंगित महासिन्धु मन्त्र शान्त भुजंगेर मतो
पड़े छिला पद प्रान्ते उच्छ्वसित फणा लक्ष शत
करि अवनत

'कुन्द शुभ्र नग्न कान्ति सुरेन्द्र वन्दिता'

'उर्वशी' में सागर का आत्मार्पण पुरुष का प्रतीक है। 'विजयिनी' में वसत-सखा मदन का आत्मोत्सर्ग पुरुष की भारी पराजय है:—

मदन, वसंत सखा,
नतशिरे, पुष्प धनु पुष्प शरभार
समर्पिलो पद प्रान्ते पूजा उपचार
तूण शून्य करि। निरस्त्र मदन पाने
चाहिला सुन्दरी शान्त प्रसन्न वदने
....

अर्थात्,

कामदेव ने नतमस्तक होकर पुष्प के धनुष-बाण को सुन्दरी विजयिनी के पदप्रान्त में समार्पित किया, इस प्रकार प्रेम और सौन्दर्य के देवता ने अपने तूण को नारी की पूजा करने में खाली कर दिया, निरस्त्र मदन को सुन्दरी ने शान्त एवं प्रसन्न मुद्रा में देखा......।

पुरुष अपनी पराजय को पराजय रूप में नहीं मानता, बल्कि वह इस हार को अपनी विजय समझता है। जयदेव के कृष्ण इस सत्य को राधा के समक्ष बड़ी कलात्मकता से प्रस्तुत करते हैं। गीत गोविन्द का यह दृश्य रसिक जन की अन्तरात्मा को इन्द्रिय से इन्द्रियातीत आनन्द में समाधिस्थ करता है।

'स्मरगरलखण्डनं मम शिरसि मण्डनं
देहि पदपल्लवमुदारम्।'

राधा-भाव में कृष्ण को अनिवर्चनीय आनन्द की अनुभूति होती है। सच्चा प्रेमी अपने प्रियतम को पाना चाहता है, यह जाग्रत यौवन का सत्य है।

उसमें अपने आप को सन्निविष्ट कर देना शिव एव सुन्दर की सृष्टि है। परिणय में इस सृष्टि का प्राणवान् रूप विश्व-ब्रह्माण्ड के सौन्दर्य को अपनी भुजाओं में भरकर आलिंगन करता है, यही अगणित प्राणियों के जीवन का सत्यं, शिव, सुन्दर है। मानव और मानव की गृहलक्ष्मी मे चिर आराध्य एवं विश्व वन्दित महालक्ष्मी की शोभा एव सरस्वती का काव्य-सगीत अधिष्ठित किया गया है। गुरुदेव मानव एव मानव की जीवनसंगिनी में सत्यं, शिव, सुन्दर की खोज करते-करते प्रकृति और ब्रह्म के सत्य शिव सुन्दर में दत्तचित्त हो गये। फलतः प्रकृति और ब्रह्म का लीला रस उन्हें आनन्द-विह्वल करने लगा। वे प्रकृति और ब्रह्म की सत्योपलब्धि तथा आनन्दानुभूति से विभोर होकर काव्य में सत्य शिव सुन्दर का प्रणयन करने लगे। रवि-रश्मियों का अरुणोदय जीवन की चेतना है:—

एसो तुमि प्रिये,
आजन्म साधन धन सुन्दरी आमार
कविता कल्पना-लता।



रवीन्द्रनाथ की कहानियाँ

कवीन्द्र रवीन्द्र की श्रेष्ठता उनकी कविताओं-गीतिकाव्य, में है। गीति-काव्य के पश्चात् उत्कृष्टता की दृष्टि से छोटी कहानियो का स्थान श्रेष्ठ है। गुरुदेव की कवितायें एवं कहानियाँ स्वाभाविक कविधर्म में उत्तीर्ण हुई हैं। उनका स्वाभाविक कविधर्म उनकी कविताओं और कहानियों में साफल्य लाभ करता है। वस्तुतः वंगसाहित्य मे छोटी कहानियों का सूत्रपात रवीन्द्र-नाथ ने ही किया है। बङ्किमचन्द्र की सर्वांगीण प्रतिभा कभी भी छोटी कहानियों की ओर आकृष्ट नहीं हुई। यद्यपि उनकी दो एक कहानियाँ ऐसी हैं, जिन्हें वास्तविक अनुभूति एवं स्वाभाविक कथाविस्तार, भाव एव कल्पना के प्रभाव से आन्दोलित किया गया है, परन्तु छोटी कहानियों की कसौटी पर कसने से वे पूर्णतः छोटी कहानियों की कोटि मे नहीं आतीं। वे उपन्यास की कथा का लघुरूप मात्र प्रतीत होती हैं। बङ्किम युगप्रवर्तक ऋषि हैं। वे मानव जीवन के सम्मुख सर्वोच्च आदर्श की प्रतिष्ठा करते हैं। अतः उनकी वाणी राष्ट्रीय एवं सामाजिक अभ्युत्थान की नूतन चेतना एवं नूतन प्रेरणा सिद्ध हुई। विशाल देश और जाति के सगठन के लिए योजना का विस्तृत हो जाना स्वाभाविक है। अतएव ऋषि वकिम के उपन्यास एवं लघु कथायें योजना में बाधक राजतन्त्र के विप्लव का विस्तृत चित्रण हैं। इनकी कथा-वस्तु इसीलिए बहुत कुछ कल्पना के आधार पर द्रौपदी दुकूल हो गई है।

छोटी कहानियों की विशेषतायें हैं, छोटे से वातावरण में जीवन की एक छोटी, तुच्छ घटना के अंश को अभिव्यक्त करना अथवा ज्ञानात्मक भावा-त्मक एवं क्रियात्मक अनुभूतियों को घटनाचक्र में भाव-रसकल्पना एवं प्रतिभा के द्वारा आन्दोलित करके उसे चित्रित करना; कथावस्तु के किसी

एक अश के दृश्य को रूपान्वित करना छोटी कहानियों को कलाकृति है। रवीन्द्रनाथ ने ही सर्वप्रथम सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन की सकीर्ण तथा नगण्य समझी जानेवाली कथावस्तु को कला के समुच्च पद पर प्रतिष्ठित किया है। जीवन की आशा-आकाक्षा, भाव-अभाव, हर्ष विषाद परिवार से बृहद् समाज तक फैले हुए हैं। कुशल कलाकार के हाथों में ऐसी अनेक तुच्छ समझी जाने वाली घटनायें अमरता प्राप्त कर चुकी हैं। रवीन्द्रनाथ ने अपनी सुगभीर सहानुभूति एव सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से जीवन की सैकड़ों घटनाओं को आत्मसात् करके भाव, कल्पना एवं रूप-रस से निषिक्त किया है। गुरुदेव के अभिनव ससार का निरीक्षण करके भावुक विमुग्ध हो जाता है। रवीन्द्रनाथ ने जीवन की सकीर्णता को छोड़कर अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन किया है। उनकी कहानियों में सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन हुआ है। हमारे प्रतिदिन के कार्यकलाप भावनापूर्ण होते हैं। मानव जीवन बड़ा वैचित्र्यपूर्ण है। चित्तवृत्तियों का विचित्र रूप होना स्वाभाविक है। महाकवि भारवि ने ठीक ही कहा है—'विचित्ररूपाः खलु चित्तवृत्तय.।' मानव का वैचित्र्यपूर्ण जीवन चित्तवृत्तियों के उद्वेग, चाञ्चल्य, प्रेम, करुणा, दया—पर दु.खकातरता, उदारता से समुन्नत होता है। भावुक मानव ऐसी घटनाओं से अत्यधिक प्रभावित होता है। कुशल कलाकार मानव के मर्म-स्थल को आन्दोलित करने के लिए ऐसी घटनाओं एवं प्रसंगों का चुनाव करता ही है, क्योंकि उसे अभीष्ट है मानवात्माको द्रवित करना और प्राणों को अनुप्राणित करना। जीवन की गुप्त भावधाराओं का आविष्कार रवीन्द्र-नाथ ने किया है। श्री जयशकर 'प्रसाद' ने कथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत कुछ इसी सुगभीर सहानुभूति एव सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का उन्मीलन किया है। उनकी जीवनलीला हिन्दी-साहित्य के लिए वरदान स्वरूप मिली, और दिवालोक की तरह आलोकित होकर अन्तर्धान हो गई। परन्तु कथा-साहित्य में उन्होंने जिस सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का उन्मेष किया वह उनकी भावात्मक, ज्ञानात्मक एवं क्रियात्मक अनुभूति का परिचायक है। 'प्रसाद' की कहानियाँ

रसमयी एवं भावपूर्ण हैं। इसका कारण स्पष्ट है। 'प्रसाद' हिन्दी का युग प्रवर्त्तक कलाकार है। उसकी प्रतिभा कवित्व से अनुप्राणित हुई है। फलतः उसकी कहानियों का भावनापूर्ण होना निसर्गसिद्ध है। भाव एवं कल्पना तथा रूप एव रस का प्रसाद की कहानियों में पूर्णरूपेण समन्वय हुआ है। पाश्चात्य साहित्य के अध्येता अपनी दिल व दिमाग की आँखों मे एक खास तरह का चश्मा लगा लेते हैं, इसलिए उन्हें 'प्रसाद' और 'रवीन्द्र' की कहानियाँ शायद कुछ कम जँचती हों; अथवा उनका दाम्भिक दृष्टिकोण इन कलाकारों के समझने में बाधक होता हो; अथवा वे अपनी ज्ञान विदग्धता का, हिन्दी साहित्य स्रष्टाओं की च्युति-विच्युति निकालकर रोब गालिब करना चाहते हों और अपनी प्रतिष्ठा की दुन्दुभी बजाना चाहते हों, परन्तु रवीन्द्र और 'प्रसाद' की प्रतिष्ठा वाक् अधिष्ठातृ-देवता, स्वयं सरस्वती ने की है। प्रसाद और रवीन्द्र भारत के जाज्वल्यमान रत्न हैं। प्रत्येक भारतीय को इनकी कृतियों पर स्वाभिमान है। क्योंकि इनकी सृष्टि मे भारतीय संस्कृति का निरूपण हुआ है। जैसा कि ऊपर कहा गया है, 'प्रसाद' का जीवन अल्प रहा; फिर भी उनकी प्रतिभा बहुमुखी है—अर्थात् महाकवि कालिदास के शब्दों से 'प्रसाद' की प्रतिभा और कला की तुलना की जा सकती है :—

> दिने दिने सा परिवर्धमाना लब्धोदया चान्द्रमसीव लेखा।
> पुपोष लावण्यमयान्विशेषान ज्योत्स्नान्तराणीवकलान्तराणि॥

हिन्दी साहित्य में 'प्रसाद' की कृतियों का अध्ययन प्रेमचन्द्र की कृतियों की तरह न हो सका, इसका रोना अब भी रोया जा रहा है। कुछ पंडितों ने ठीक ही कहा है कि भारत के पश्चिमी जिलों मे प्रसाद-साहित्य का प्रचार कम हुआ है। हिन्दी का दुर्भाग्य कहूँ अथवा उक्त जिलों के व्यक्तियों की बुद्धि का दीवालियापन कहूँ; निराला और 'प्रसाद' की कृतियों का यदि प्रचार नहीं होता है और लोग इन्हें नहीं समझ पाते हैं, तो इससे निराला और प्रसाद की श्रेष्ठता, महत्ता एवं रसात्मकता कम हो

जायगी, इसे कम से कम कोई भी भावुक एव विचारशील व्यक्ति मानने को तैयार न होगा। 'प्रसाद' और निराला गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की भावात्मक एव रसात्मक काव्य-माल्य के सुगधित सुमन हैं। इन कवियों की कृतियों में कविप्रतिभा एव गीतिप्रतिभा, रूप, रस तथा छन्द-स्वर के साथ नृत्य करती हुई प्रवाहित हुई है।

रवीन्द्रनाथ और 'प्रसाद' की कहानियाँ कवि-लेखनी प्रसूत हैं। परन्तु प्रसाद कवि हैं, रवीन्द्रनाथ विश्वकवि हैं। इसीलिए रवीन्द्र और प्रसाद की कहानियों में पार्थक्य है। रवीन्दनाथ की काव्य रस-निषिक्त प्रतिभा अतुलनीय है। ऐसी प्रतिभा को प्राप्त करके उन्होंने मानव जीवन की साजसज्जा शून्य लीला देखी है। अनाडम्बर जीवन-प्रवाह से कविहृदय कहानियों में भाव-विह्वल न हो सका, बल्कि दुःख दैन्य, करुणा-क्रन्दन तथा आनन्द-उल्लास से उच्छ्वसित होकर पृथिवी की वेदना सुनने के लिये सतर्क एवं सावधान हो गया है। गुरुदेव की अधिकाश कहानियों में गीतिकविता (लिरिक) का सा वेदन-निवेदन है। कविता लिखने का एक खास तरह का मूड होता है, इसी मूड से कवि प्रेरणा पाकर कविता का प्रणयन करता है। रवीन्द्र की कहानियाँ कविता की ही तरह भावों से अनुप्राणित हुई हैं। परन्तु कवि कविताओं में भाव-विभोर है और कहानियों में सतर्क।

रवीन्द्रनाथ की अधिकाश कहानियाँ कविजीवन के स्वर्णयुग की द्योतक हैं। "सोनार तरी" से लेकर "चित्रा" "चैताली" "काहिनी" "कल्पना" "कथा", क्षणिका आदि में कविजीवन उच्छ्वसित हो उठा है। डा० नीहार रजन राय के शब्दों में विशेष करके "सोनार-तरी" "चित्रा" तथा "चैताली" की कविताओं में समस्त विश्व जीवन के साथ उनका (गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का) बहुत ही सहज एव आनन्दपूर्ण योग है; समस्त कार्य एव सम्पूर्ण अभिज्ञता के अन्तर्गत उनका अपूर्व विस्मयकर सौन्दर्यबोध विद्यमान है। तुच्छ से तुच्छतम वस्तु भी उनकी दृष्टि से ओझल न हो सकी। उन्होंने साधारण से साधारणतम विषयों को अपनी कविताओं

एव कहानियों मे सर्वोच्च पद प्रदान किया है। नदी के गर्भ मे बने द्वीप पर कोई बाँस की लम्बी पतली तीलियाँ छीलता है; नदी के घाट पर शरीर पर के कपड़े उतार कर ग्रामीण बालिका मल मलकर नहाती है, सरोवर में हंस तैर रहे हैं आदि दृश्य गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की दृष्टि को आकर्षित करते रहे। फलतः उन्हीं दृश्यों का चित्रण उनकी कविताओं और कहानियों मे हुआ है। प्रकृति के साथ कवि रवीन्द्र का एकात्मबोध, जीवन के सहज सामान्य व्यापार उनके मानस मे श्रद्धा और विश्वास का भाव जाग्रत करते रहे।

कवि रवीन्द्र की सुप्रसिद्ध कहानी 'पोस्टमास्टर' जिस समय लिखी गई थी, उस समय वे अपनी जमीदारी की देख भाल कर रहे थे। उनके दिन पूर्वी बंगाल मे एक नदी के ऊपर पड़ी नौका पर बीत रहे थे। कवि की यह जीवन-यात्रा अपूर्व आनन्दमय एवं वैचित्र्यपूर्ण थी। वंग प्रान्त का निर्जन प्रदेश, नदी का तट, उन्मुक्त आकाश, खुले मैदान, छाया-सुनिविड़-ग्राम, सरल साजसज्जाशून्य ग्रामजीवन, दुःख से पीड़ित, अभावों मे व्यथित फिर भी शान्त सहिष्णु ग्रामवासी; इन सब घटनाओं एव मार्मिक दृश्यों का कवि ने चित्रण किया है। कवि की इन ग्रामवासियों के साथ सहानुभूति एव ममता बढती गई। उसने वंग प्रान्त के ग्रामजीवन मे अपनी कवित्व शक्ति से प्रेरित अन्तर्दृष्टि का प्रसार किया। ऐसे परिवेश में रहकर भावुक रवीन्द्र की भावुकता कहानियों के रूप मे प्रस्फुटित होने लगी। कवि की प्रतिभा कहानियों के अन्तर्गत पूर्णरूपेण दुःख-सुख, वेदना और आनन्द में उन्मीलित हुई है।

'पोस्टमास्टर' में कवि रवीन्द्र ने स्नेहलोलुप एव निःसहाय ग्रामीण बालिका के सकरुण जीवन का चित्रण किया है। बालिका का स्नेहाकांक्षी हृदय स्नेह विच्युति की आशंका से कारुणीक भावमुद्रा का प्रकाशन करता है। गुरुदेव की ये कहानियाँ गीत धर्म से अनुप्राणित हैं। गीत-धर्म कवि की भावुकता का सार्वात्म्य भाव है। प्रकृति—जड़-चैतन्य, प्रेम-करुणा के नाना रूप, रस, गन्ध एव छन्द-ध्वनि के साथ समन्वित है। प्रकृति के मूल-

तत्त्व सब में समान हैं। अतएव विश्व जगत् की सारी घटनायें एक दूसरे के प्राणों की ही धड़कने हैं। गुरुदेव की अन्तर्दृष्टि प्राणों के सकरुण एवं अश्रु-सजल-गीत सुनती है और उसी की कहानियों में सृष्टि करती है। फलतः गुरुदेव रवीन्द्र की कहानियाँ अव्यक्त प्राणों की व्यथा का अभिव्यक्त चित्र हैं।

अपने बन्धु बान्धवों से दूर एक विजन ग्राम में दरिद्र पोस्टमास्टर अपने जीवन को निर्वासित समझता है। कभी कभी वह अपने कमरे में अकेले बैठकर 'स्नेह पुत्तलि मानव मूर्ति' के साथ विविध मनोरथ की कल्पनायें करता रहता है। उसे अपने बाल बच्चों और स्त्री की बातें याद आती हैं।

केवल इतनी सी बात को कवि ने सुन्दर करुण रूप प्रदान किया है। विदा का अवसर समीप आया, रतन (बालिका) पोस्टमास्टर के सामने से दौड़ती हुई निकल गई। भूतपूर्व पोस्टमास्टर धीरे धीरे नाव की ओर चला। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के हृदय की ममता एवं वात्सल्य पोस्टमास्टर के रूप में निम्नलिखित प्रकार से चित्रित हुई है:—

पोस्टमास्टर "जब नौका पर चढ़े और नौका चल दी—वर्षाविस्फारित नदी धरणी की उच्छलित अश्रुराशि की तरह चारों ओर छल छल करने लगी, तब हृदय में वे एक प्रबल वेदना का अनुभव करने लगे, एक सामान्य बालिका की करुण मुखच्छबि मानो एक विश्व व्यापी बृहद् अव्यक्त व्यथा का प्रकाश करने लगी। एक बार नितांत इच्छा हुई कि लौट चलूँ, जगत् की क्रोड विच्युत उसी अनाथिनी को साथ ले आऊँ, किन्तु उसी समय पाल को हवा मिलती है, वर्षा का स्रोत प्रखर वेग से बहता है, ग्राम अतिक्रम करके नदी तट का श्मशान दिखाई देता है—एवं नदीप्रवाह में भासमान पथिक के उदास हृदय में इस तत्त्व का उदय हुआ, जीवन में ऐसे ही कितने विच्छेद और कितनी मृत्युयें होती रहती हैं, लौटने से फल क्या? पृथिवी में कौन किसका?"

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की इसी प्रकार की कहानियाँ—'काबुलीवाला' 'महामाया' 'एक रात्रि' प्रभृति हैं, जिनमें कवि ने 'विच्छेदव्यथित' प्राणों का आर्त्तनाद अंकित किया है। गुरुदेव की इन गीतधर्मी कहानियों में भाव की प्रधानता है। उनकी भावप्रधान कहानियों मे प्राणों की भाषा प्राणी ही तक सीमित नहीं है; बल्कि सम्पूर्ण प्रकृति स्नेहबन्धन एव विच्छेदक्रन्दन से अभिभूत है। गुरुदेव ने मानव मन की वेदना को विश्वव्यापी रूप मे परिकल्पित किया है:—

"देखते ही देखते पूर्व दिगन्त से घनी मेघराशि प्रकाण्ड काले पाल को उठाकर आकाश मे फैल गई, चाँद आच्छन्न हो गया; पुरवैया वेग से बहने लगी; बादलों पर बादल उमड़ने लगे; नदी का जल खल् खल् हास्य से स्फीत होकर उठने लगा; नदी तीरवर्ती आन्दोलित वनश्रेणी मे अन्धकार पुजीभूत हो उठा, मेढक बोलने लगे; झिल्ली की ध्वनि मानो आरी से अन्धकार को चीरने लगी—सामने आज मानो समस्त जगत् की रथयात्रा है, चक्र घूम रहा है, ध्वजा उड रही है, पृथिवी काँप रही है; मेघ घुमड रहा है, हवा वह रही है।"

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ वस्तुतत्त्व को लेकर कहानी का सूत्रपात करते हैं, किन्तु उनकी मानसिक सृष्टि कथा-वस्तु को छोड़कर रस के भावलोक मे आत्मविसर्जन करती है! 'काबुलीवाला' कहानी के प्रसंग से इस कथन की पुष्टि होती है:—

पाँच वर्ष की छोटी बालिका मीनी अपने दरवाजे की बैंच पर बैठी हुई है। सुदूर सीमा प्रान्त को पार करके भारत मे अपना लेन-देन करने वाला 'काबुली वाला' मीनी के पैरों के पास जमीन मे बैठा हुआ है। वह मीनी का अनर्गल प्रलाप सुनकर मुसकरा देता है और बीच बीच मे प्रसगानुसार अपनी सम्मति भी बँगला मे देने लगता है। 'काबुली वाला' मीनी को बहुत प्यार करने लगता है। वह मीनी को किसमिस और खुबानी अपनी काबुल वाली झोली से निकालकर देता है। मीनी का पिता उससे कहता है—

'उसे यह सब क्यों दिया, इस तरह और अब न देना।' ऐसा कहकर वे काबुली वाले को एक अठन्नी दे देते हैं। मीनी घर के भीतर आती है। मा पूछती है—

"तूने यह अठन्नी कहाँ पाई ?"

मीनी कहती है—"काबुली वाले ने दिया है।"

मा जोर से कहती है—"काबुली वाले के पास तू अठन्नी लेने क्यों गई ?"

मीनी रुआसी होकर कहती है—मैंने नहीं माँगा, उसने अपने आप दिया, पिता आकर मीनी को विपद से मुक्त करता है। रवीन्द्रनाथ इस घटना को बड़ी मार्मिकता से चित्रित करते हैं। मीनी के पिता ने अठन्नी काबुली वाले को किसमिस और खूबानी के मूल्यरूप में दी थी, किन्तु वात्सल्यपूर्ण काबुलीवाले ने उस अठन्नी को चुपके से मीनी के हाथ में द दी। पिता को यह ज्ञात न हो सका। काबुली वाले का हृदय ममतापूर्ण है। वह रोज आता है और पिस्ता बादाम की घूस देकर मीनी के 'क्षुद्र लुब्ध हृदय' पर अधिकार कर लेता है। इन दोनों में मैत्री हो गई है। काबुली वाले का नाम रहमत है। उसे देखते ही मीनी पुकारती और पूछती— "काबुली वाला ओ काबुली वाला तोमार ओ झूलिर भीतर की।' रहमत एक अनावश्यक चन्द्रविन्दु योग करके हँसते हुए कहता है—

"हाँती"

अर्थात् उसकी छोटी सी झोली के भीतर एक बड़ा भारी हाथी है, यही उसके परिहास का सूक्ष्म मर्म है। दोनों में खूब वात्सल्यपूर्ण हँसी होती। रहमत ने एक दिन हँसते हुए पूछाः—

"(खोखी तोमी ससुरबाड़ी कखनू जावे ना)"

बिटिया, तुम सुसराल कभी जाओगी नहीं !

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का कथन है 'वगाली घर की लड़की आजन्म 'श्वशुरबाड़ी' शब्द से परिचित होती है' किन्तु मीनी इस शब्द से अनभिज्ञ

थी। इसलिए वह काबुली वाले के अनुरोध को न समझ सकी। उसने उसी के शब्दों में उलट कर पूछा—तुमि (तुम) श्वशुरबाड़ी जावे (जाओगे)? रहमत काल्पनिक श्वशुर के प्रति प्रकाण्ड मुष्टिका का आस्फालन करके कहता है—

"हामी ससुरके मारबे।" (मै ससुर को मारूँगा।)

मीनी ससुर नामक किसी एक अपरिचित जीव की दुरवस्था की कल्पना करके खूब हँसती।

× × ×

गुरुदेव रवीन्द्र ने एक विदेशी, अन्य धर्मावलम्बी मानव के हृदय के कोमल वात्सल्य भाव का उन्मीलन किया है। 'काबुली वाला' रुपये पैसे के मामले में बड़ा बेमुरब्बत होता है। गुरुदेव ने उसकी इस प्रवृत्ति की ओर संकेत किया है। उसने एक आदमी को छुरी मार दी थी। उसकी सजा हो गई। हथकड़ी पहने जब वह मीनी के दरवाजे वाली सड़क से जा रहा था, तब मीनी की नजर उस पर पड़ी और वह एकाएक बोल उठी—

'तुमि श्वशुर बाड़ी जावे?" (तुम ससुर बाड़ी जाओगे?) रहमत हँस कर बोला 'सिखानेइ जाच्चे' (वहीं जाता है)।

काबुली वाले को कई वर्ष की जेल हो गई। मीनी बढ़कर पूर्ण युवती हो गई। जैसे जैसे उसकी उम्र बढ़ने लगी, वैसे वैसे उसकी सखाओं के बजाय सखियों से दोस्ती बढ़ने लगी। काबुली वाले की बातें विस्मृत हो गई। किन्तु भावुक प्राणों में अतीत की घटनायें नित्य नवीन रहती है। गुरुदेव का काबुली वाला उन्हीं की तरह अनुभूतिसम्पन्न है।

× × ×

शरद का सुहावन समय है। विवाह की शहनाई मीठे पतले स्वर से बज रही है। काबुली वाला कमरे के सामने आकर सलाम करता है। मीनी का पिता पहले पहचान न सका, क्योंकि उसका रूप और पोशाक बदली हुई थी, परन्तु गौर करने पर ज्ञात हुआ; यह काबुली वाला है। मीनी के

पिता ने पूछा 'की रे रहमत कबे आसिली' (क्यों रे रहमत कब आया ?) उसने कहा—'काल सध्या बेला जेल से खालास पाया है।'

उसके मन में यह विश्वास था कि मीनी पूर्ववत् होगी। किन्तु मीनी अब पूर्ण युवती हो गई है। सबके सामने निकलने में उसे लज्जा होती है। 'काबुली वाला' गुरुदेव का सवेदनाशील पात्र है। उसकी व्यथित आत्मा का करुण क्रन्दन गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के सिवा और कौन दरदी दिल सुन सकता है।

मीनी का पिता उस खूनी की सूरत से नफरत करने लगता है। अतः काबुलीवाले को सुनना पड़ा—

"आज हमारे घर में एक काम है, मैं कुछ व्यस्त हूँ, तुम आज जाओ।"

भावुक प्राणी की आत्मा छोटी से छोटी बात से रो पड़ती है, उसका हृदय फूल से भी अधिक सुकुमार होता है, फिर यह तो बहुत बड़ी बात थी। अस्तु, काबुली वाला तत्क्षण चलने के लिये उद्यत हुआ, अन्त में वह दरवाजे के पास जाकर ठिठक गया और बोला—"बिटिया को एक बार क्या न देखने पाऊँगा ?" उसका भावविह्वल मन मीनी की पतली आवाज सुनने के लिए अधीर हो रहा था। उसकी कल्पना में मीनी पुकार रही थी—

'काबुली वाला ओ काबुली वाला' पुराने वात्सल्य का स्मरण करके वह एक बक्स में अगूर और कागज के पैकेट मे किसमिस बादाम, शायद अपने देश के साथियों से माँग जाँचकर मीनी के लिये लाया था। उसकी अपनी झोली नहीं थी।

मीनी के पिता ने जरा झुँझलाकर कहा—आज घर में काम है, आज किसी से भी मुलाकात नहीं हो सकती। वह कुछ उदास हो गया। शान्त-भाव से खड़े खड़े उसने स्थिर दृष्टि से मीनी के पिता की ओर देखा, तत्पश्चात् 'बाबू, सलाम' कहकर दरवाजे के बाहर निकल गया। मीनी के पिता के

मन में बड़ी व्यथा हुई; इच्छा होने लगी, उसे बुलाऊँ; इसी समय उन्होंने देखा कि वह खुद लौटा आ रहा है।

समीप आकर उसने कहा—

"ए अगूर औा कुछ थोड़े से किसमिस-बादाम खोकी (बिटिया) के लिए लाया था, उसे दे दीजिएगा।"

मीनी के पिता ने उसे ले लिया। और पैसे देने के लिए वे उद्यत हुए। काबुली वाले ने हाथ पकड़ लिए और कहा—

"आपकी बहुत दया, मुझे चिर काल स्मरण रहेगी—मुझे पैसा न दें।" बाबू, आपके जैसे लड़की है, वैसे देश में मेरे भी लड़की है। मैं उसी का भोला मुख याद करके तुम्हारी खोखी (बच्ची) के लिए कुछ मेवा लिए आता हूं; मैं सौदा करने तो आता नहीं।"

काबुली वाला अपनी कन्या के छोटे हाथ की छाप हृदय से लगाये हुए प्रतिवर्ष कलकत्ते की गलियों मे मेवा बेचने आता है मानों उसी सुकोमल छोटे शिशुके हाथ का स्पर्श उसके विराट् विरही वक्ष मे सुधा सचार करता रहता है। मीनी के पिता की आँखों मे आँसू छलकने लगे। वे काबुली वाले के वात्सल्य से द्रवीभूत हो गये। उन्होंने अनुभव किया—'वह भी पिता है, मै भी पिता हूँ।' उसकी 'पर्वतगृहवासिनी' छोटी पार्वती के उसी 'हस्तचिन्ह' ने हमारी मीनी की याद दिला दी। मैं भूल गया कि वह 'काबुली मेवा वाला' है और मैं एक सम्भ्रान्त बशीय बंगाली हूँ। मैंने मीनी को अन्तः पुर से बुलवाया। अन्तः पुर मे बड़ी आपत्ति की गई, परन्तु मैंने कुछ ध्यान न दिया। रंगीन परिधेय पहने हुए तथा मस्तक में चन्दन लगाये हुए वधू-वेशिनी मीनी सलज्ज भाव से मेरे पास खड़ी हो गई। काबुली वाला किंकर्त्तव्य-विमूढ हो गया, उसकी पुरानी बातें मन की मन ही में रह गईं। अन्त मे उसने हँसकर कहा—

"खोखी, तुम ससुर बाड़ी जायगी?"

मीनी अब ससुराल का अर्थ समझती है; अब वह पहले की तरह उत्तर

न दे सकी—रहमत के प्रश्न को सुनकर एवं लज्जा से आरक्त होकर वह मुख घुमाकर खड़ी हो गई।

गुरुदेव रवीन्द्र की कहानियाँ—"काबुली वाला' एवं 'पोस्ट मास्टर', उनकी अन्तर्गूढ व्यथा और प्रबल वात्सल्य का द्योतक हैं। प्राणों का विच्छेद क्रन्दन, एवं आसक्ति का आर्त्तनाद समस्त प्रकृति में व्याप्त होकर मानव-निसर्ग की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि को उन्मीलित करता है। कवि का भावुक हृदय अपने जीवन की विरह और मिलन की अनुभूतियाँ छिपाये रखता है। कालान्तर में उन्हीं अनुभूतियों के संस्कार कवि हृदय को नित्य नूतन सृष्टि करने के लिए अनुप्राणित करते हैं। कवि रवीन्द्र का कवित्त्व इन छोटी छोटी कहानियों के रस से अभिषिक्त होकर विस्तृत-विश्व के प्राणों में अमृत धारा-प्रवाहित कर रहा है। कवि रवीन्द्र मानव के प्राणों का स्पन्दन, उसकी अनुभूति, एवं उसके स्थायी भावों का कहानियों में चित्रण करता है। पुरातन संस्कार प्रेम की रँगीली तूलिका से बड़े कवित्त्व पूर्ण ढंग से चित्रित किये गये हैं। कवि रवीन्द्र प्रेम चन्द की तरह न तो कहानियाँ लिखता है और न वैसी उसकी सुधार की मनोवृत्ति है। प्रेम चन्द को गुरुदेव से यदि प्रेरणा मिली होगी, तो केवल मानव प्रेम की, अथवा विश्व-बन्धुत्त्व की, अथवा उपनिषद के निरुपाधिक ब्रह्म की, परन्तु गुरुदेव की तरह उन्होंने दरदी होकर समाज के पुरातन संस्कारों को सुसंस्कृत करने की चेष्टा नहीं की; बल्कि उन्होंने समाज सुधारने की प्रेरणा 'आर्यसमाज' से पाकर विप्लव का भैरव नाद किया है। प्रेम चन्द सुधारक हैं, हिन्दी की दो लिपियों में उनकी कहानियाँ लिखी गई हैं। फलतः भारत के उत्तर पश्चिम एवं मध्य में उनका प्रचार भी खूब हुआ है। परन्तु रवीन्द्रनाथ की कहानियों के साथ उनकी तुलना करने से ज्ञात होता है कि प्रेम चन्द अपनी कथा-वस्तु को अनावश्यक ढग से बढ़ाते जाते हैं, किसी स्थायी भाव की प्रतिष्ठा के लिए वे तरह तरह की दलीलें और नजीरें पेश करते हैं। वे अपनी बात को मनवाने के लिए कमर बाँधकर मैदान में आते हैं और विरोधी दल की बात

को चुटकी बनाकर उड़ा देते हैं। फलतः उनका ज्ञानात्मक और क्रियात्मक पक्ष सबल बन जाता है और पाठक उनकी शैली का मुरीद बन जाता है। रवीन्द्रनाथ की शैली प्रेमचन्द से नितान्त भिन्न है; यद्यपि वे भी सुधारक हैं और ब्रह्म समाज की दीक्षित सतान हैं। वे मानव की अन्तरात्मा मे प्रविष्ट होकर मानव की करुणा प्रेम दया तितिक्षा एवं पर दुःख कातरता की अनुभूति रखते हैं। इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रेमचन्द में उपर्युक्त सद्गुणों की अनुभूति का अभाव है; वरन् कहानियों की अभिव्यञ्जना से एव अन्तर्दृष्टि के उन्मीलन से तथा कल्पना के भाव लोक में आत्म-विसर्जन से; यह सरलतया स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमचन्द कथा वस्तु को छोड़कर रस के ऊर्ध्व लोक मे उठकर भाव लोक की कल्पना में आत्म-विसर्जन नहीं करते। 'प्रसाद' जी की कहानियों मे इस भावानुभूति एवं भावात्मक सत्योपलब्धि का उज्ज्वल रूप निखर उठा है। "रोहितास दुर्ग के एक प्रकोष्ठ में बैठी हुई युवती ममता, शोण के तीक्ष्ण गम्भीर प्रवाह को देख रही थी। ममता विधवा थी। उसका यौवन शोण के समान उमड़ रहा था। मन में वेदना, मस्तक में आँधी आँखों में पानी की बरसात लिए, वह सुख के कण्टक शयन में विकल थी।" ('ममता') (मधूलिका) "वह कुमारी थी। सुन्दरी थी। कौशेय वसन उसके शरीर पर इधर-उधर लहराता हुआ स्वय शोभित हो रहा था........कृषक बालिका के शुभ्र भाल पर श्रम कणों की भी कमी न थी। वे सब बरौनियों मे गुँथे जा रहे थे।......अरुण देख रहा था। कृषक-कुमारी मधूलिका को। आह कितना भोला सौन्दर्य! कितनी सरल चितवन!"

....

"मेरा हृदय तुम्हारी उस छवि का भक्त बन गया है देवि!"

"मेरे उस अभिनय का—मेरी विडम्बना का। आह? मनुष्य कितना निर्दय है; अपरिचित! क्षमा करो, जाओ अपने मार्ग।" गुरुदेव रवीन्द्रनाथ तथा प्रसाद जी की भावात्मक अनुभूति सत्य, शिव, सुन्दरं का निरूपण

करती है। ऐसी सृष्टि के लिए कवि का भाव पक्ष सबल होता है। वह प्रेम और करुणा के द्वारा मानव मन का विश्लेषण करता है और कवित्वपूर्ण भाषा में सत्योपलब्धि तथा आनन्दानुभूति का प्रणयन।

'दुराशा' कहानी में कवि रवीन्द्र ने अजेय प्रेम की प्रशस्ति प्रस्तुत की है। प्राणों का भावात्मक सगीत बाधा प्राप्त करता है, वह द्विगुण वेग से आन्दोलित होने लगता है। ऐसी भावनाओं का चित्रण करना केवल भावुक कवि का व्यापार है। क्योंकि कवि भाव रस एव सगीत का अन्तर्द्रष्टा होता है। उसकी कविताओं और कहानियों में भावना ग्रन्थियों का उन्मीलन होता है।

एक नियत शुद्धाचारी ब्राह्मण अपने तपः पूत ऐश्वर्य से नवाब पुत्री के मुग्ध हृदय को श्रद्धा एव प्रेम से विनम्र कर देता है। प्रेम की अजेय शक्ति से वह षोडशी नवाब पुत्री अपने अन्तः पुर को छोड़कर बाहर आई। बाहर आते ही उसे प्रेम के देवता के सन्निकट निष्ठुर एव निष्करुण उपदेश प्राप्त हुआ, किन्तु प्रेम ने हार न मानीः—

"मुहूर्त्त में सज्ञा-लाभ करके कठोर कठिन, निष्ठुर निर्विकार पवित्र ब्राहण के पद तल में दूर से प्रणाम किया—मन ही मन कहा, हे ब्राह्मण ! तुम हीन की सेवा दूसरे का अन्न, धनी का दान युवती का यौवन, रमणी का प्रेम, कुछ भी ग्रहण नहीं करते, तुम स्वतंत्र हो, तुम एकाकी हो, तुम निर्लिप्त हो, तुम सुदूर हो, तुम्हारे निकट आत्म-समर्पण करने का अधिकार भी मेरा नहीं।"

नवाब पुत्री का प्रेम ब्राह्मण के मन में किसी अन्य भाव की प्रतिष्ठा नहीं करता है। एकान्त में वही ब्राह्मण मुसलमान-दुहिता के निकट पवित्र प्रेम का प्रत्याख्यान करके चला जाता है। वह नवाब पुत्री अपने को ब्राह्मण के योग्य बनाने की प्रबल चेष्टा करती है। वह सस्कृत पढती है और सस्कृत पढकर शास्त्रों का पाठ करती है। उसे महसूस होने लगता है कि ब्राह्मण आज उसके प्राणों में व्याप्त हो गया है। उसकी अन्तरात्मा ब्राह्मण की

भावुकता से अभिभूत हो गई है। यह कहानी गुरुदेव की काल्पनिक एव भावात्मक है। वे प्रेम से विश्व को गले लगाने के लिए अपने साहित्य मे ऐसे तत्त्वों का प्रतिपादन करते हैं, जिनका विश्व जनीन शान्ति एवं मैत्री की प्रतिष्ठा मे सर्वोत्कृष्ट स्थान है। हिन्दी साहित्य में प्रसाद साहित्य की अभी उतनी विस्तृत विवेचना नहीं हो पाई जितनी रवीन्द्र साहित्य की वग भाषा में हुई है। रत्नों की खोज मनीषी या जौहरी करते हैं, रत्न किसी को खोजने नहीं जाते। महाकवि 'प्रसाद' हमारी मातृ भाषा हिन्दी के गौरव हैं। उनकी उदार विश्रुत कीर्त्ति का उज्ज्वल प्रकाश विश्वव्यापी होगा और राष्ट्र भाषा का मुख वग भाषा की तरह समुज्ज्वल होगा। रत्न किसी को नहीं ढूँढता है, बल्कि रत्न को मत्र ढूँढते हैं।

'न रत्न मन्विष्यति मृग्यते ही तत्'

फलतः गुरुदेव की कहाहियाँ हमारी राष्ट्र भाषा के लिए उत्कृष्ट कल्पना शक्ति सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति एव द्विधा भाव से व्यापृत रूप-रन-पिपासा की प्रेरणा देती रहेंगी।

'शेष कथा' में गुरुदेव रवीन्द्र की प्रतिभा पुनः निसर्ग की वैचित्र्य पूर्ण परिधि से अनन्त क्षितिज का छोर छूती है। कवित्व मय भाषा भावों की व्यञ्जना को निसर्ग के विस्तृत वातावरण मे प्रति ध्वनित करती है। मानव, प्रकृति से अनुप्राणित होता है; फलतः उसका चित्त प्रकृति के नाना प्रकार के दृश्यों से प्रभावित हुए बिना बच नहीं पाता। रवीन्द्र की भावुकता विप्लव के भैरव नाद मे भी प्रेम करुणा एव पर-दुःख कातरता का मनो मुग्धकारी स्वर मुखरित करती है। वग साहित्य मे उसकी कहानियाँ अपनी विशिष्ट शैली के लिए अभूतपूर्व हैं। प्रकृति की अन्ध प्राण-शक्ति में कवि गुरु रवीन्द्र चिन्मय मानव की सुकुमार तथा कोमल कठोर वृत्तियों का समावेश करके आनन्द मय सृष्टि का भाव प्रवण रूप प्रस्तुत करता है। यही उनकी कहानियों की मौलिक चेतना है॥

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का नाट्य साहित्य

काव्य में नाटक को रम्य माना गया है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का मानस कवि धर्मी है। कवि के काव्य में कवि मानस का प्रकाश मिलता है। कवि काव्य में आत्म-प्रकाश करके उसे वैचित्र्य पूर्ण ढग से अभिनीत करता है। फलतः कवि की सूक्ष्म सौन्दर्यानुभूति दृश्य काव्य में परिणत हो जाती है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के सम्पूर्ण साहित्य में कवि का गीत धर्म व्याप्त है। उनकी कविताओं, कहानियों एव उपन्यासों में उनका गीत धर्म प्रकाशित हुआ है। और नाटकों के सवाद, सगीत, नृत्य एव अभिनय में गुरुदेव का 'नव रसाभिनय चातुर्य' परिलक्षित होता है। वगसाहित्य मे दीनबन्धु, माइकेल मधुसूदन दत्त, गिरीशचन्द्र एव डी०एल्० राय के नाटक अत्यधिक प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुके हैं। हिन्दी भाषा में भी वग साहित्य के उत्तम-उत्तम नाटकों का अनुवाद हुआ है। गिरीशचन्द्र और द्विजेन्द्रलाल राय के नाटकों मे नाटकीय तत्व पूर्ण रूपेण सफल हुए हैं। इन नाटकों के अभिनय से दर्शकों को पर्याप्त आनन्दानुभूति हुई है, क्योंकि ये नाटक अभिनय की कला मे पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं। वगीय नाटकों में पाश्चात्य नाट्य साहित्य का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। विशेष कर अँगरेजी साहित्य की-शेक्सपियर की शैली का वग भाषा मे नाना प्रकार से प्रवेश हुआ है। काल क्रम से वग साहित्य पाश्चात्य उपादानों से उन्मुक्त होकर आधुनिक नाटकों में अपनी अभिनव भाव भगिमा का उन्मेष करता है। जिस प्रकार आधुनिक अगरेजी नाटकों में ग्रीक ट्रेजेडी अथवा एलिजाबेथीय नाटकों के लक्षणों का अभाव मिलता है, इसी प्रकार आधुनिक वग साहित्य में शेक्सपियरीय नाटकों का प्रभाव विलुप्त है। वगभाषा संस्कृत से अनुप्राणित हुई है, परन्तु

संस्कृत नाटकों से वंगभाषा का विच्छेद पहले ही हो गया था। दीनबन्धु और गिरीश चन्द्र के नाटकों में दृश्य काव्य के लक्षण पर्याप्त हैं, परन्तु वे सब अंगरेजी नाटकों का अनुकरण हैं। वंगीय नाट्य मञ्च यूरोपीय आदर्श के अनुसार रचा गया है। इसे डा० नीहार रंजन राय ने भी स्वीकार किया है। उनका कथन है कि इसे स्वीकार करने में किसी भी प्रकार की लज्जा नहीं होनी चाहिए।

आचार्य भरत के नाट्य शास्त्र में भारतीय नाटकों की परम्परा की ओर सकेत किया गया है। परन्तु आधुनिक विद्वानों ने 'नट' एव 'नाट्य' की नाना प्रकार से व्याख्या एव परिभाषा की है। आज का वैज्ञानिक मानव परम्परा का गतानुगतिक नहीं है। वह परम्परा का सस्कार वैज्ञानिक विधि से करता है। प्राचीन रूढियों का अभिनय नूतन भाव भगिमा से होता है। पिष्टपेषित कथावस्तु मनोवैज्ञानिक ढग से अभिनीत होती है। मानव मन के संस्कारों एवं भावना ग्रन्थियों का उन्मीलन आज कल के नाट्यकार मनोविज्ञान के आधार पर करते हैं। वे अपनी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि से मानव की मूल प्रवृत्तियों एव उनसे प्रेरित प्रेम, करुणा, घृणा, ईर्षा-द्वेष, दया, ममता, वात्सल्य, एव पर दुःख कातरता का नाटकों मे प्रदर्शन करते हैं भाग्य विधान प्राचीन नाटकों की काया पलट देता था। परन्तु आज मानव-मन मानवीय संस्कारों एव पुरातन रूढियों की काया पलट देता है। नियति भी आज सामान्य नटी के रूप मे रग मच पर अभिनय करती है और स्रष्टा मानव के चरणों मे आत्म विसर्जन करके कृत कृत्य होती है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के नाटकों में उपर्युक्त भावों का पूर्ण रूपेण अभिनय हुआ है। वे मानव मन के पूर्ण पारखी हैं। उनकी अनुभूति-सम्पन्न प्रतिभा उनके नाटकों में पल्लवित हुई। वे स्वय 'नव रसाभिनय चतुर' नट एव अभिनेता थे। अतएव नाटकीयता के भाव प्रदर्शन का कौशल, किन संवादों एवं गीतों के माध्यम से दर्शकों को भाव विह्वल करेगा वे खूब जानते थे। 'वाल्मीकि-प्रतिभा' रवीन्द्रनाथ का प्रथम नाटक है।

कवि ने इसमें स्वय वाल्मीकि की भूमिका में अभिनय किया था, साथ ही कवि के परिवार की बालिकाओं ने भी इसमें सहर्ष भाग लिया था। 'वाल्मीकि प्रतिभा' का अभिनय कवि हृदय के आनन्द और उल्लास की चिन्मय भाव भगिमा है। उन्मुक्त छन्द, वैष्णवी रागिनी, सवाद-नृत्य का अभिनय लोक में लोकातीत आनन्द की प्रतिष्ठा करता है।

'वाल्मीकि प्रतिभा' 'कालमृगया' 'प्रकृतिर प्रतिशोध' एव 'मायार खेला' आदि की सृष्टि सगीत से भावाविष्ट हुई है। विदेश में रहकर कवि रवीन्द्र आयरिश मेलोडीज के स्वर में आसक्त हो गया था। विलायत में रहकर उन्होंने नाना प्रकार के गीत सुने और सीखे। फलतः उनकी स्वर साधना में परिवर्त्तन एव परिवर्धन होना स्वभाविक था। उन्होंने अपनी 'जीवन स्मृति' मे स्पष्ट लिखा है कि 'देशी और विलायती स्वर की चर्चा के अन्तर्गत "वाल्मीकि प्रतिभा" का जन्म हुआ है।'...वस्तुतः 'वाल्मीकि प्रतिभा' में सगीत का एक नवीन ढग से प्रयोग हुआ है। यह कवि के गीत नाट्य का प्रयोग है। गीत नाट्य की विषय वस्तु एव भाव का अभिनय सर्वथा नूतन नहीं है। इस नाटक में रस-माधुर्य गीतों के द्वारा अभिव्यक्त किया गया है। कवि रवीन्द्र इस नाटक में किसी नवीन तथ्य का सम्पादन नहीं करता, बल्कि वह स्वरसाधना की परीक्षा करता है

'जाओ लक्ष्मी अमराय, जाओ लक्ष्मी अलकाय,
ए वने एसो ना एसोना ए दीन जन कुटीरे'

इस नाटक के स्वरों का गुजन अभिनय के साथ आनन्दित करता है। स्वर भाव कल्पना को मूर्तिमान करता है अभिनय के साथ। अतएव 'वाल्मीकि प्रनिभा' और 'काल मृगया' की विषय वस्तु रामायण से ली गई है। कवि रवीन्द्र दस्यु रत्नाकर की काव्य प्रतिभा का अभिनय करता है। 'काल मृगया' में वह दशरथ के द्वारा अन्धमुनि के पुत्र श्रवणकुमार के वध का करुण दृश्य प्रस्तुत करता है। वाल्मीकि प्रतिभा' और 'काल मृगया' की कथा वस्तु रामायण के आधार पर अभिनीत हुई है। परन्तु

'प्रकृतिर प्रतिशोध' में कवि ने अपनी प्रतिभा से नूतन सृष्टि की है। इस लघु नाटक का नायक एक सन्यासी है। वह ससार के बन्धनों को एवं प्रकृति के विचित्र सौन्दर्य को विच्छिन्न करके इन्द्रियों के ऊपर विजय पाने के लिए निर्जन अँधेरी गुफा में साधना करता है। एक दिन वह नगर के राजपथ से जा रहा है, उसे एक मातृ पितृ हीन बालिका मिलती है। वह उस परित्यक्त बालिका पर दयार्द्र होता है और उसे उठाकर कुटी मे पहुँचा देता है। उसी दिन से बालिका उसे 'पिता' कहकर पुकारने लगती है। इस प्रकार सन्यासी के हृदय में स्नेह एवं पर दुःख कातरता का भाव जाग्रत होता है। वह कहता है—

'आज होते आमि आर नहिरे सन्यासी।'

अर्थात्, आज से मैं अब सन्यासी नहीं रहा।

'प्रकृति—प्रतिशोध' मे मानव की मूल प्रवृत्तियाँ उसे प्रकृति की ओर उन्मुख करती हैं, फलतः अर्जित संस्कार विलुप्त हो जाते हैं। यही प्रकृति का प्रतिशोध है। "माया के खेला" में, सुख के मोह में प्रेम की छलना मे तरुण प्राण का सगीत अभिनीत हुआ है:—

'एरा सुखेर लागि चाहे प्रेम, प्रेम मेलेना'

'ये सब सुख के लिए प्रेम चाहते हैं, पर प्रेम नहीं मिलता।'

'शुधू सुख चले जाय
एमनि मायार छलना'

अर्थात्, प्रेम के पीछे उद्भ्रान्त होने से पीड़ित होना पड़ता है, ऐसा माया का छलिया रूप है।

रवीन्द्रनाथ के उपर्युक्त नाटकों में दया, ममता प्रेम, स्नेह वात्सल्य आदि गुण, तपस्या की कठोरता मे, सस्कारों के अनुशासन में एवं नाना प्रकार के विधि विधानों में, सघर्ष करते हुए अन्ततोगत्वा मानव का स्थायी भाव बनते हैं। दस्यु रत्नाकर (वाल्मीकि) अभ्यास की कठोरता में, सन्यासी संस्कारान्ध शासन में तथा सुन्दरी रूप और यौवन के मद में अपनी मौलिक

प्रवृत्तियों की अन्तरात्मा में निहित शक्ति भूले हुए हैं। परन्तु मानसिक द्वन्द्व तथा परिस्थितियों के संघर्ष नाटकों में अभिनय करते हैं।

मानव का मानसिक द्वन्द्व एवं परिस्थितियों का संघर्ष जितना ही नाटकों में स्पष्टता से अभिनीत होगा, उतना ही नाटक सफल होता है। 'प्रकृतिर प्रतिशोध' के द्वन्द्व में स्वाभाविक मनुष्यत्त्व को विजय हुई है। अतः यह नाटक सर्वाधिक सफल हुआ है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ इस नाकट में अपने प्रयोग से सिद्ध करते हैं कि स्वाभाविक मनुष्यत्व नाना संघर्षों एवं द्वन्द्वों में अपने पूर्णत्त्व का वरण करता है। मानव की मौलिक शक्ति सुसंस्कृत होकर अथवा विकृत होकर संघर्ष करती है, परन्तु सफल नाट्यकार इन परिस्थितियों की अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता में स्वाभावि-मनुष्यत्त्व का आविष्कार करता है। टॅम्सॅन् साहब ने गुरुदेव के नाटकों के विषय में ठीक ही कहा है—

"His dramatic work is the vehicle of ideas, rather than the expression of action,,

इस छोटे से प्रबन्ध में गुरुदेव के सब नाटकों की विवेचना करना संभव नहीं है! उनका विशाल साहित्य सागर है। इस विशाल साहित्य सागर में संतरण करना एवं मुक्ताओं के लिए डुबकी मार-मारकर अवगाहन करना, दुस्साध्य व्यापार है। फिर जिस व्यक्ति को सभी चीजें सुन्दर ही सुन्दर दिखाई देती हैं, उसे सुन्दर और असुन्दर में भेद करना अत्यन्त कठिन हो जाता है। शायद ऐसे दृष्टिकोण वाले व्यक्ति का अनुशीलन पक्षपात शून्य नहीं होता, क्योंकि उसके नयनों में सावन की हरियाली सी छाई रहती है अथवा सदा दिवाली और सदा बसंत नजर आता है। यह सरलतया कहा जा सकता है कि, 'सावन के अन्धे ज्यों सूझन हरो हरो।' परन्तु यह विचार करने की बात है, आखिर बात क्या है कि सावन के अन्धे को हरा ही हरा सूझता है? यह है प्राकृतिक साज सज्जा और नेत्रों की संवेदन शीलता भावोन्माद उन्हीं प्राणियों को होता है जो संसार के सर्वाधिक

सुकुमार हृदय वाले होते हैं। पशु को हिस्टीरिया नहीं होती; वह मानव की तरह भाव विह्वल नहीं होता; हाँ, इन्स्टिक्ट से प्रेरित हो कुछ विशेष प्रकार की प्रचेष्टायें अवश्य करता है। परन्तु भावुक इन पर अपनी अनुभूतियाँ आरोपित करके आनन्द विभोर होता है। सहृदय को सारी प्रकृति सवेदनशील एव अनूभूति सम्पन्न दिखाई देती है।

कहने का तात्पर्य यह है कि जिस प्राणी की जैसी भावना होगी तदनुरूप प्रकृति उसे दिखाई देगी। आनन्द वादी को दुःखमय ससार, आनन्द का ऋणात्मक पक्ष हो क्यों न हो, आनन्दमय दिखाई देता है। दुःख मे भी आनन्द की अनुभूति होती है—

वे तो मानत तोहि नहीं, तैं कत भर्‍यो उमंग।
नहिं दीपक कछु दरद, क्यों जरि-जरि मरैं पतंग॥ बाबा दीनदयाल

रहमदिल फानूस से पतगे झुँझला कर कहते हैं:—

फानूस को परवानो ने देखा तो ये बोले,
क्यों हमको जलाते हो कि जलने नहीं देते! (अकबर)

भावुकता मे दुःखमय ससार आनन्दमय बन जाता है। प्यारी लौ से लिपटने के लिए पतगे फानूस से कहते हैं—'हमे अपनी प्यारी लौ से आलिंगन करने क्यों नहीं देते? क्यो हमारे बीच में बाधक होकर हमें जलाते हो? यह भाव विह्वल की आनन्दानुभूति की प्रचेष्टा है। अगर हम सावन के अन्धे को हरियाली ही हरियाली दिखाई देती है, और इसे देखकर हम मुजरिम साबित किये जाते हैं, तो क्या हम पूछ सकते हैं कि यह सावन की हरियाली आखिर क्यों दिखाई देती है? अगर दिखाई देती है तो इतनी सुहावनी क्यों दिखाई देती है? इसका उत्तर मृत्पिण्ड बुद्धिजन शायद नहीं दे पायेंगे, अगर देंगे तो सूखा जवाब टका सा देंगे; इसलिए किसी दिलदार से पूछना चाहिए; किसी काव्यरस मर्मज्ञ रसिक से पूछना चाहिए; अथवा किसी भावुक मनीषी से पूछना चाहिए; सन्तोष प्रद उत्तर

मिलेगा। आत्मा आनन्दविभोर हो जायगी। मन मयूर नाच उठेगा। प्राणों के निभृत निकुञ्ज में गुरुदेव रवीन्द्र का वेणु-वादन होगा—

आमार चित्ते तोमार सृष्टि खानि
रचिया तुलिछे विचित्र एक वाणी।
तारि साथे, प्रभु, मिलिया तो मार प्रीति
जागाये तुलिछे आमार सकल गीति
आपनारे तुमि देखिछो मधुर रसे
आमार माझारे निजेरे करिया दान।
हे मोर देवता, भरिया एदेह प्राण
की अमृत तुमि चाहो करिबारे पान।

अर्थात्, मेरे चित्त में तुम्हारी सुन्दर सृष्टि एक विचित्र वाणी का प्रणयन करती रहती है। उसी के साथ, हे प्रभो! तुम्हारा प्रेम मिलकर मेरे मानस में नाना प्रकार के गीतों को उद्भूत करता रहता है। मेरे अन्तर्गत आप अपने मधुर रस का दान करके अपनी ही सुन्दरता का अवलोकन करते हो? अथवा मुझमें आप अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा करके तुम अपने को मधुर-रस व्यापृत देखते हो।' रवीन्द्र साहित्य के सुविख्यात आलोचक श्री मोहित लाल मजुमदार ने स्पष्ट लिखा है कि रवीन्द्र काव्य एव साहित्य गीति धर्मी है, उसमें बंग वासी की जाति गत प्रतिभा की जय हुई है। इसके मूल में जो कल्पनाभङ्गी है, वह भारतीय काव्य पन्था की अनुगत न होने पर भी भारतीय साधना के आदर्श से अनुप्राणित है। रवीन्द्रनाथ की तरह विशुद्ध भारतीय मानस प्रकृति बंकिम चन्द्र की भी न थी, वरन् इस हिसाब से कवि बंकिम यूरोप का मानस पुत्र है। जो भी हो, मजुमदार साहब को ही नहीं सारे भारत को रवीन्द्र और बंकिम पर गर्व है। बंकिम सर्व प्रथम भारतीय जीवन में गीता की तरह-'तस्मात् उत्तिष्ठ' की शंख ध्वनि करते हैं। तदुपरात रवीन्द्र जन मन गण का अधिनायकत्व करने को अग्रसर होते हैं। दोनों के व्यक्तित्व भारत के वरदान हैं।

रवीन्द्रनाथ का साहित्य गीत-धर्मी है। यह उनके काव्य और साहित्य के सभी-आलोचकों का निष्कर्ष है। उनकी गीत धर्मी आत्मा, काव्य के अन्तर्गत ही पल्लवित नहीं हुई है, वरन् उनके नाटकों, छोटी कहानियों एवं उपन्यासों मे इनकी भावुक आत्मा पूर्णतः विकसित हुई है। 'राजा ओ रानी' 'विसर्जन' तथा मालिनी इनके नाटकों का द्वितीय पर्व है। भाव, कल्पना एवं विषय वस्तु की दृष्टि से इन तीनों काव्य नाटकों की मूल चेतना एक जैसी है हृदय का उद्वेग एव गुप्त वेदना कवि चित्त को आक्रान्त किये हुए है। कवि 'मानसी' की कविताओं मे अपने हृदय के आवेग एव वेदना को अभिव्यक्त करता है। उसी समय कवि 'राजा ओ रानी' तथा 'विसर्जन' का प्रणयन करता है। 'राजा ओ रानी' नाटक में हृदयोच्छ्वास प्रबल है। विषय वस्तु की इतनी महत्ता नहीं है; क्योंकि कवि का लक्ष्य सम्भवतः गीत काव्य के आवेग की ओर है। फिर भी इसकी कहानी पिष्ट पेषित न होने से अत्यन्त रोचक है। 'विसर्जन' गुरुदेव रवीन्द्रनाथ का सुविख्यात नाटक है। यह शिक्षित समाज में सर्वाधिक समादृत हुआ है। 'विसजन'' की घटनायें "राजा ओ रानी' की तरह सघटित है। घटनाओं के क्रमिक विकास से विषय वस्तु बड़ी कुशलता से प्रसारित की गई है। गोविन्द मानिक्य त्रिपुरा का राजा है। उसकी रानी बड़ी गुणवती है। रघुपति राजा का पुरोहित एक अत्यन्त तेजस्वी ब्राह्मण है। इस रघुपति के द्वारा पालित एक राजपुत्र युवक है, जिसका नाम जयसिंह हैं। अपर्णा नामकी एक सरल बालिका है। त्रिपुरेश्वरी के मन्दिर मे पशु बलिदान की परम्परागत प्रथा है। किसी के यह हिम्मत नहीं है कि इस प्रथा के विरुद्ध कुछ कहे। सर्व प्रथम इस प्रथा के विरुद्ध अपर्णा अपनी आवाज बुलद करती है। क्योंकि उसका प्यारा छागशावक आज मा त्रिपुरेश्वरी के मन्दिर मे बलिदान के लिए पकड़ लाया गया है। सरलहृदया बालिका राजा के निकट आँखों में आँसू भर कर आती है। मन्दिर का सेवक जयसिंह बालिका के करुणा कातर स्वर से व्यथित हो जाता है। उसे आज विश्व नवीन प्रेम सन्दिग्ध बना देता है। राजा उसी दिन से मन्दिर मे

बलिदान की निषेधाज्ञा का प्रचार करता है। पुरोहित रघुपति क्रोध से जलने लगता है। धर्म विनाश की सम्भावना से राजा के मंत्री और परि-षदवर्ग आशंकित हो जाते हैं। युवराज नक्षत्र राय और प्रजा सभी विपद की सम्भावना हेतु भय और त्रास से व्याकुल हो जाते हैं। जय सिंह का चित्त राजा के आदेश से आशंकाकुल हो जाता है, वह इस आदेश को सुनकर विचलित होता है केवल राजा भयभीत नहीं होता, शेष सभी को आशंका होने लगती है।

दूसरी ओर रघुपति (ब्राह्मण) अपने क्रोध को चारों ओर विकीर्ण करता है। सभी लोगों को वह राजा के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उत्त-जित करता है पुरवासी राजा के आदेश के विरोध में मंदिर में बलि करने आते हैं, और राजा अपने सैन्य बल से इसका प्रतिकार करता है। जय सिंह राजा को किसी प्रकार भी शान्त नहीं कर पाता। रघुपति उन्मत्त होकर युवराज और जय सिंह को राजा के विरुद्ध विप्लव करने के लिए प्रेरित करता है। वह पुरोहित जय सिंह को भली-भाँति समझा देता है:—

"राजरक्त चाइ देवीर आदेश।"

अर्थात्, देवी के आदेशानुसार राजरक्त चाहिए। जय सिंह का भक्त एवं करुणा-कातर हृदय अत्यधिक आशंकित हो जाता है, वह सोचता है कि सर्वमंगला जगजननी मा, क्या वास्तव में इतनी निष्ठुर पाषाण हृदया हैं? क्या वास्तव में वे रक्त की प्यासी हैं?

"किन्तु राजरक्त! छि, छि, भक्ति पिपासिता माता,
तारे बोलो रक्त पिपासिनी"!

अर्थात्, "राजा का खून! छिः छिः भक्ति पिपासिता माता को रक्त—पिपासिनी कहते हो! तो फिर क्या बलि बन्द होगी? हो" किन्तु नहीं, नहीं, गुरु रघुपति के प्रति अश्रद्धा एवं अविश्वास होगा, जब तक तन में प्राण हैं, यह सम्भव नहीं होगा। वह स्पष्ट कहता है कि महा माया यदि राजरक्त चाहती है तो मैं वह रक्त अवश्य लाऊँगा। गुरुदेव की आज्ञा है

कि जय सिंह अपर्णा से दूर रहे। उस से दूर रहने से अपर्णा के प्रति उसके मन में वेदना की तन्त्री प्रबल गति से बजने लगती है। फिर भी गुरुदेव ब्राह्मण हैं, उनकी आज्ञा शिरोधार्य है:—

ताइ देव गुरु देव !
चले जा अपर्णा ! दया-माया स्नेह प्रेम
सब मिथ्या ! सरे जा अपर्णा........
.........चले जा अपर्णा ?

जय सिंह अपर्णा को अपने से दूर रखना चाहता है, किन्तु वह कहती है—'क्यों जाऊँ ?' किन्तु अभिमान नहीं है।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की प्रेम करुणा एव वेदना मूर्तिमान होकर अभिनय करती हैं। रघुपति और जय सिंह के संवाद दर्शकों के हृदय में विराट् विप्लव और आशंका का भाव जाग्रत करते हैं। नाटकीयता की उत्कृष्टता मे, रघुपति की गरजती हुई वाणी मानों वज्रशिखा की मशाल जलाकर आती है, चार चाँद लगाने।

रघुपति के आदेशानुसार जय सिंह राजा की मन्दिर में हत्या करने जाता है परन्तु छूरी हाथ से फिसल जाती है, हाथ काँप उठता है उसे फिर प्रतिज्ञा करनी पड़ती है :—

"मैं ला दूँगा राजरक्त, श्रावण की अन्तिम रात में देवी के चरणों में" परन्तु रघुपति अभी शान्त नहीं होता है। उसी के षड्यन्त्र से मन्दिर मे प्रस्तर प्रतिमा का मुख पलट जाता है, इससे सारी प्रजा और अधिक शकित तथा भयभीत हो जाती है। परन्तु राजा गोविन्द माणिक्य निर्विकार एव शान्त चित्त से स्थित है। जय सिंह के प्राणों मे द्वन्द्व एव संघर्ष मे आन्दोलन हो रहा है। एक ओर अपर्णा उसे अपने प्रेम और करुणा से आकर्षित करती है और दूसरी ओर पुरोहित रघुपति अपने निर्मम स्नेह एव कठोर आदेश से उसे प्रभावित करता है। इस द्विधा भाव में पड़कर जय सिंह मार्मिक वेदना एवं निष्करुण आदेश से छुट-पटाने लगता है। राज हत्या के

षड्यन्त्र में रघुपति बन्दी होता है और विचार-सभा में उपस्थित किया जाता है। विचारोपरान्त उसे 'अष्ट वर्ष निर्वासन' का आदेश होता है। आज उसकी उद्दण्ड प्रकृति कुछ झुकती है:—

"गेछे गर्व, गेछे तेज, गेछे ब्राह्मणत्व।"

गर्व गया, तेज गया, ब्राह्मणत्व गया, रघुपति अब अनुभव करने लगा है। परन्तु उसका पौरोहित्य उसे उत्पीड़ित करता है, वह व्यथित होता है अपनी आन्तरिक ज्वाला से :—

'राज-रक्त चाई देवीर'

इधर नक्षत्र राय (युवराज) मुगल सेना की सहायता से त्रिपुरा पर आक्रमण करता है। जब अपना भाई ही विश्वास घातक हो गया तो फिर गैर को क्या कहना। राजा गोविन्द माणिक्य के सामने एक विकट समस्या उठ खडी होती है। मन्दिर के बाहर आँधी और तूफान का प्रकोप होता है। रघुपति निर्वासित होने से पूर्व मन्दिर में प्रवेश करता है। उसकी हिंसक पाशविक वृत्तियाँ उसे उन्मत्त बना रहीं हैं, इसी समय अपर्णा जय सिंह को खोजती हुई आती है। रघुपति आग बबूला होकर उसे प्रताडित करता है "मायाविनी! दूर हो, दूर हो, जय सिंह को चाहती है! सर्वनाशी महापातकिनी! अपर्णा चली जाती है जय सिंह दौड़ता हुआ आता है। मन्दिर में रघुपति के सम्मुख वह उपस्थित होता है। रघुपति पूछता है—

(राजरक्त कहाँ!)

जयसिंह स्तब्ध विमूढ कण्ठ से बोलता है:—

आछे, आछे, छाड़ मोरे!
निजे आमि करि निवेदन!—राजरक्त
चाइ तोर दयामयी जगत्पालिनी
माता नाहिले किछु ते तोर मिटिबे न तृषा!
—आमि राजपूत, पूर्व पितामह छिलो राजा,
एखनो राजत्व करे मोर

माता महवंश—राजरक्त आछे देहे। एइ रक्त दिबो। एइ येनो
शेष रक्त अनन्त पिपासा तोर, रक्त तृषातुरा

अपर्णा की भावना की रक्षा करता है। खून से लथपथ मन्दिर के प्रकोष्ठ में रघुपति विलाप करने लगता है—

''जय सिंह! वत्स मोर गुरुवत्सल फिरे आय, फिरे आय,

वह अपने अभिनय का करुणामय दृश्य उपस्थित करता है। उसका करुणार्द्र नाट्य दर्शकों को भावाविष्ट करता है इसी समय फिर अपर्णा आती है और जय सिंह की रुधिर से सनी मृत देह देखकर पागल सी हो जाती है। पाषाण प्रतिमा से, वह कातर होकर अपने प्यारे जय सिंह की भीख माँगती है; पर प्रतिमा तो मृन्मय होती है; प्रतिमा तो पाषाण निर्मित होती है, उसमें चिन्मय आत्मा की सी संवेदन शीलता कहाँ!

गुरुदेव रवीन्द्र का नाटक 'विसर्जन' निरर्थक एवं निष्ठुर संस्कार तथा आचार के विरुद्ध प्रखर प्रतिवाद है। बालिका अपर्णा का विशुद्ध हृदय प्रेम और करुणा के प्रति सर्व प्रथम संवेदनाशील हुआ है। ज्यों-ज्यों मानव की अवस्था प्रौढ़ होती जाती है त्यों-त्यों उसकी प्रकृति को संसार के मिथ्या प्रपंच एवं अनैतिक आचार व्यवहार जकड़ लेते हैं। इसका अन्धानुकरण रघुपति के संवेग (Emotion) में पूर्णतः दृष्टिगोचर होता है। संवेग से बुद्धि का दिवाला साफ जाहिर होने लगता है। धर्म का अन्ध-भक्त रघुपति खून से देवता की अर्चना करने के लिए उद्विग्न होता है; अतः परिणाम आँसुओं से गीला हो जाता है। मानव मन का द्वन्द्व वहिर्जगत में विराट् विप्लव, षड्यन्त्र एवं नृशंस कुकृत्यों का संचालन करने में जब सहायक होता है, तब मनुष्यत्व की किंकर्त्तव्य विमूढ़ता सद्गुणों पर वज्रपात करती है। रवीन्द्रनाथ ने मानव मन के अन्तर्द्वन्द्वों को विस्तृत विश्व में व्यापृत देखा है; सम्भवतः इसीलिए उन्होंने इसे अभिनय का रूप दिया है। 'विसर्जन' का द्वन्द्व रवीन्द्र की प्रतिभा और कला का चूड़ान्त निदर्शन है।

'मालिनी' की कथावस्तु बड़ी मनोरञ्जक एव सरल है। राजकन्या मालिनी भगवान् बुद्ध के धर्म में दीक्षित हो चुकी है। राजा का अन्तः पुर

उसे अब बाँध कर नहीं रख सकता, क्योंकि वह विश्व की है और विश्व उसका है। उसे सत्य धर्म के दर्शन विश्व के समस्त प्राणियों को सेवा में होते हैं। उसका सार्वात्म्य भाव विश्वजनीन शान्ति एवं मैत्री की शख ध्वनि है। परन्तु सनातन ब्राह्मण-धर्मावलम्बी प्रजा इस धर्म को नहीं चाहती है बौद्ध धर्म के विरोध में प्रजा उद्विग्न होती है और विद्रोही नेता देवदत्त उसका नेतृत्व करते हैं वे सबके सब राजा के निकट जाकर राजकन्या के निर्वासन की माँग करते हैं। प्रजा के विरोध करने से राजा और रानी अपनी कन्या को ब्राह्मण धर्म में प्रवृत्त होने के लिए उपदेश देते हैं। "धर्म को क्या खोजना पड़ता है? सूर्य की तरह धर्म चिर ज्योतिर्मय चिरकाल रहता है। उसी धर्म का अनुगमन करो, वही रास्ता सरल है। भक्ति भाव से व्रत और क्रियाकर्म करो—

शिव पूजा करो दिनयामी,वर मॉगि लहो,वाछा,तारि मतो स्वामी
सेइ पतिहोवेतोरसमस्त देवता,शास्त्रहोवेतारिवाक्य,सरल ए कथा

भगवान् शकर की दिन रात पूजा करो; और हे पुत्रि! उन्हीं को तरह मृत्युञ्जय स्वामी का वर माँगो वही पति तुम्हारा देवता होगा उसी के वाक्य शास्त्र वाक्य होंगे, यह बात बिल्कुल सीधी है। रमणी को और किसी धर्म मे दीक्षित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि रमणी तो धर्म की अधिष्ठात् देवता स्वय है। गुरुदेव रवीन्द्र अपनी एक कविता में नारी की वन्दना करते हुए कहते हैं :—

ये भावे रमणीरूपे आपन माधुरी, आपनि विश्वेर नाथ करिछेन चुरि

(रमणी, स्मरण)

वे इसी भाव को नाटकीय भाषा में प्रसगानुसार कुछ दूसरी तरह अभिव्यक्त करते हैं।

'रमणीर धर्म थाके, वक्षे, कोले, चिरदिन स्थिर पति-पुत्ररूपे।'

अर्थात् 'रमणी का धर्म सर्वदा स्थिर रहता है वक्ष स्थल में गोद में तथा पति-पुत्र रूप में।' इस प्रकार उसे संसार धर्म में लाने के लिए गृहस्थ धर्म की शिक्षा दी जाती है। इसी द्वन्द्व का 'मालिनी' नाटक में

उद्घाटन हुआ है। जिस प्रकार 'विसर्जन में परम्परागत धर्म के विरुद्ध मानव धर्म—विश्वधर्म, की प्रतिष्ठा के लिए द्वन्द्व और संघर्ष का संचालन होता है; उसी प्रकार 'मालिनी' में भी सनातन धर्म के विरुद्ध, मानव धर्म के प्रतीक बौद्ध धर्म का संघर्ष, नाटकीय संवादों एव भाव भंगिमाओं द्वारा प्रदर्शित किया गया है। इन दोनों नाटकों की साज-सज्जा समान है; परन्तु अभिनय की भाषा और भंगिमा एक दूसरे से अपना विशिष्ट अस्तित्व रखती हैं 'विसर्जन' का रघुपति और 'मालिन' का क्षेमङ्कर; 'विसर्जना' का जयसिंह और 'मालिनी' का सुप्रिय; प्रायः एक ही भावना से अनुप्राणित हैं। परन्तु रघुपति आत्म गौरव की ज्योति को जीवन के अन्तिमक्षणों तक अपने मे किसी न किसी प्रकार से जला रखना चाहता है। यही धारणा उसके षड्यन्त्र में प्रेरक शक्ति का कार्य करती है। परन्तु क्षेमङ्कर मे ऐसी कान्ति नहीं हैं; और न षड्यत्र को रघुपति की तर सचालित करने की क्षमता ही हैं। इसके होते हुए भी क्षेमङ्कर का चरित्र बलिष्ठ है और रघु-पति का नितात दुर्बल; क्योंकि रघुपति कारागार के दण्ड का नाम सुनकर एकदम भय से काँपने लगता है—'गेछे गर्व, गेछे तेज, गेछे ब्राह्मणत्व'

उसका गर्व, तेज और ब्राह्मणत्व मानो गिरगिट का रंग था, अथवा विदूषक की दाढ़ी-मूछ थी। अभिनय काल में प्रचण्ड अट्टहास एवं हाहाकार करने वाला रघुपति क्षणमात्र मे भीगी बिल्ली बनकर बैठ जाता है इससे उसके दुर्बल चरित्र एव मिथ्याडम्बर की कलई खुलती है। इसके विपरीत क्षेमङ्कर मृत्युदण्ड की बात सुनकर डरता नहीं, वरन् निर्भीकता से प्रत्युत्तर देता है। राजा पूछता है, यदि तुम्हें प्राण दण्ड दूँ अथवा तुम्हें क्षमा करूँ तो क्या करोगे ! रघुपति निर्भीक होकर कहता है :—

'पुन वरि कर्त्तव्य का भार ग्रहण करूँगा,
जिस पथ पर चला था, उसी पर फिर चलूँगा।

क्षेमङ्कर दृढ़ प्रतिज्ञ अविचल है, अतएव उसका चरित्र बलिष्ठ एव उदात्त है। फिर भी दोनों के अभिनय मुग्ध कर देते हैं।

प्रारम्भ में लिखा जा चुका है कि रवीन्द्र का काव्य गीतधर्मी है। उसमें

उच्च आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए रससृष्टि का आश्रय लिया गया है। स्वर गीतिकाव्य की मूल चेतना नहीं तो प्रेरणा अवश्य है। रवीन्द्र के नाटकों में स्त्रियाँ स्वर का अनुरंजन करती हुई किसी समुच्च आदर्श की प्रतिष्ठा के लिए आत्मविसर्जन करने को समुत्सुक होती हैं। उनकी वाणी में स्वर संगीत एव कविता मूर्त्तिमान होकर उत्तर प्रत्युत्तर के लिए तत्पर होती हैं।' अतएव रवीन्द्र की तरुण नारियाँ, यथा अपर्णा और मालिनी, नाटक में रस की सृष्टि के लिए अपने स्वर संगीत और कविता का आश्रय लेती हैं। रवीन्द्र की भावधारा बहुत कुछ इन्हीं तरुण नारियों का आश्रय पाकर प्रवाहित हुई है।

वग सहित्य के लब्धप्रतिष्ठित आलोचकों ने रवीन्द्र नाथ के नाटकों को क्रमिक ढग से पर्वों में विभाजित किया है। उनके निम्नलिखित नाटक चतुर्थ पर्व में आते हैं:—

गान्धारीर आवेदन, सती, नरक वास, लक्ष्मीर परीक्षा, कर्ण कुन्ती संवाद,

गान्धारी के मानस में भी द्विधा भाव की सृष्टि नाटकीय महिमा से मण्डित है। उसका पुत्र स्नेह और स्वामी-धर्म उसे वैयक्तिक धर्म के लिए बाध्य करता है और दूसरी ओर उसकी मानवीय वृत्तियाँ उसे मानव धर्म की ओर प्रेरित करती हैं। फलतः उसके मानस में भी द्वन्द चलने लगता है। यद्यपि धृत राष्ट्र के चरित्र में भी अन्तर्द्वन्द्व की प्रतिष्ठा हुई है, परन्तु वह पूर्णतः आत्म प्रकाश नहीं कर पाती, इसका कारण यह है कि वे पुत्र स्नेह में अन्धे हो गये हैं अर्थात् वे अपने पुत्रों के अलावा किसी और को फूटी आँखों भी देखना नहीं चाहते। इसके अतिरिक्त गान्धारी मातृस्नेह से युक्त होने पर भी दुर्योधन के वैरी पाण्डवों को आशीर्वाद देती है। अतएव उसका चरित्र उच्चादर्श को लेकर सकुंचित परिधि में डोलायमान होता है। यही इस नाटक की महत्ता है। 'सती' नाट्य में भी द्वन्द की प्रधानता है। यदि समाज धर्म और परम्परागत सस्कार एक ओर चरित्र को सगठित करते हैं, तो दूसरी ओर स्वाभाविक पितृस्नेह का भाव द्वन्द्व उत्पन्न करता है। सस्कारान्ध माता रमाबाई नाटकीय तत्त्वों की सगति प्राप्त करने के लिए मातृ

स्नेह को भूल कर परपुरुष की चिता में अपनी कन्या को चढ़ा देती है। कर्ण-कुन्ती के संवाद में भी मानसिक द्वन्द्व का अभिनय हुआ है। रवीन्द्र ने मानव के सद्गुणों एवं उच्चादर्शों को प्राचीन ग्रंथों से ग्रहण करके नाटकों के रुप मे प्रतिष्ठित किया है। फलतः उनकी काव्य प्रतिमा में प्राचीन सस्कृति पुनः अपनी उदारवाणी का नित्य शुद्ध परिवेश प्रस्तुत करती है तथा नूतन सामाजिक चेतना सत्य शाश्वत मानव धर्म का जयघोष करती है। इन दोनों विचार धाराओं का द्वन्द्व रवीन्द्र के नाट्य साहित्य मे अभिनीत हुआ है।

गुरुदेव के पचम पर्व में व्यंग नाट्य प्रस्तुत किये गये हैं, क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियाँ ऐसी ही थीं; जिनका साहित्य के माध्यम से निराकरण करना आवश्यक था। रवीन्द्र नाथ ने निम्नलिखित नाटकों के माध्यम से समाज के दुर्बल, सकीर्ण मिथ्या आचरण का उन्मूलन करने के लिए व्यग नाटक लिखे हैं; जिनमे व्यग कौतुक, हास्य कौतुक आदि प्रसिद्ध हैं। 'वैकूठेर खाता' 'गोड़ाय गलद' आदि प्रहसन हैं, जिनमें शुद्ध हास्यरस समाविष्ट है। 'तासेर देश' नाटक में व्यग की स्पष्ट छाप है; परन्तु इसमें तात्त्विक कथन चढे व्यग पूर्ण ढग से चरितार्थ किया गया है। 'शारदोत्सव' 'फाल्गुनि' 'रक्त कबरी' प्रभृति नाटकों में कवि का विधेय है, प्राकृतिक सुषमा का निरूपण करके जयगान करना 'डाक घर' रहस्यमय गीतधर्मी नाटक है। इस नाटक के करुण, गीतमाधुर्य में दूरागत वंशी रव सुनाई देता है अथवा सुदूर का रहस्यमय सगीत। यह सगीत प्राणों को सुन्दर करुण रहस्य से अभिभूत करता है। समस्त नाटक में इसी सगीत की स्वर लहरी गूँजती प्रतीत होती है। 'डाक घर' गुरुदेव का उत्तम रहस्यमयी नाटक है। 'फाल्गुन' में कवि रवीन्द्र ने वसत का स्तवगान बड़ी कलात्मकता से किया है। यह भाव-प्रधान नाटक होने पर इसमें सौन्दर्य की अनुभूति दार्शनिक रीति से अभिव्यक्त कीगई है आनन्दोत्सव का अधिकारी वही हो सकता है, जो जरा के कष्ट से मुक्त है; जो नित्य नूतन प्राणों की कल्पना में लीन है।

रवीन्द्र नाथ का "नटीर पूजा" "शाप मोचन" तथा नृत्य नाट्य चित्रा-गदा, आदि में उनका नृत्य और नाट्य रस संचार करता है। "नटराज

ऋतुरंग शाला का नृत्य और भावभंगिमा जीवन का नृत्य है, गम्भीर यन्त्र लीला ऋतु का वैचित्र्य पूर्ण स्वरूप प्रस्तुत करती है । इसमें मानव प्राणों की व्यञ्जना और आवेग, उन्मुक्त होकर नाट्य-रस को आत्मसात् करने के लिए भावाविष्ट होते हैं। भाव व्यञ्जना और अभिनय की दृष्टि से 'नटीर पूजा' को महत्त्व दिया है। यह नाटक अन्य नाटकों की तरह नृ य तथा भाव प्रधान नहीं है' यह वस्तु प्रधान होने से सूक्ष्मभावानुभूति को मूर्त्तिमान कर देता है । गीति तथा नृत्य नाट्य में सूक्ष्म सौन्दर्य की अनुभूति दृश्य के आश्रम से सरलतया बोधगम्य एव ग्राह्य हो जाती है। अतएव गुरुदेव रवीन्द्र नाथ के उपर्युक्त नाटकों में भावमुद्रा का विशुद्ध रुप अभिनय ग्राह्य होकर दर्शकों एव वाचकों को आनन्दित करता है। 'नृत्य नाट्य चित्रागदा' में सूक्ष्मभावों की अन्तर्दृष्टि को अभिनय के द्वारा उन्मीलित किया गया है। प्राणों की सूक्ष्म अनुभूतियाँ, यदि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ के दृश्य काव्य में परिणत न होती, तो हमें भाव, रस, कल्पना एवं छन्द नृत्य का ज्ञान इतनी सरलता से न हो पाता। मानव की भावना-ग्रन्थियाँ अत्यन्त जटिल हैं, उनकी अवतारणा नाटकों में करना सबसे अधिक जटिल है, परन्तु गुरुदेव की प्रतिभा ने इन भावनाग्रन्थियों को अपने दृश्य काव्य मे बड़ी सफलता से उन्मीलित किया है। फलतः गुरुदेव रवीन्द्र कवि-कीर्त्ति एव कवि सृष्टि के अधिनायक हैं । उनकी नित्य नूतन कवि कल्पना हमारी रसपिपासा को सतुष्ट करके विशुद्ध साहित्य की आसक्ति का उन्मेष करती है। गुरुदेव के काव्य रस से ज्यों ज्यों पिपास सतुष्ट होती जाती है त्यों त्यों विश्वजनीन प्रीति का भाव स्थायी होता जाता है।

हे मोर चित्त, पुण्य तीर्थे जागो रे धीरे—
एइ भारतेर महा मानवेर सागर तीरे ।
हेथाय दाँड़ाये दु बाहु बाड़ाये नमि नर देवता रे
उदार छन्दे परमानन्दे वन्दन करि ताँरे ।

औपन्यासिक रवीन्द्र

बंग साहित्य के मार्मिक प्राणरस की सृष्टि उसकी शाखा-प्रशाखा के पल्लव पल्लव में एवं सुमन-सुमन में उपचीयमान है। रवीन्द्र की प्रतिभा इसके मर्ममूल को सर्वाधिक रस निषिक्त करती है। फलतः बंग साहित्य का सर्वांगीण विकास होना, नितांत स्वाभाविक है। उन्होंने केवल साहित्य की समृद्धि ही नहीं की, बल्कि उसे अभिनव ढंग से संस्थापित करके प्राण-वान् बनाया है। गुरुदेव रवीन्द्र की प्राणप्रद सृष्टि मृन्मय मानवीय प्रतिमा में भी प्राण-प्रतिष्ठा करती है। मुमूर्षु मानव प्राणमयी सृष्टि के सम्पर्क मे अमरत्व प्राप्त करता है। इस तथ्य का क्रमिक निरूपण गुरुदेव के साहित्य में प्रतिफलित हुआ है।

गुरुदेव रवीन्द्र नाथ से पूर्व बंग साहित्य के अधिनायक बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय थे। बंकिम की प्रतिभा तथा प्रकाण्ड पाण्डित्य से बंग साहित्य सम्पूर्ण भारत मे तो गौरवान्वित हो ही चुका था, विदेशी भी उनकी विदग्ध सूक्ष्म अन्तर दृष्टि का लोहा मानते थे। बंकिम के उपन्यास भारत के भाग्य विधान का क्रियाशील निरूपण है। बंकिम भारत के तपस्वी मनीषी हैं। उनके प्राणमय उपन्यास स्वजाति, स्वदेश एव स्व समाज के संस्थापक हैं। बंकिम चन्द्र की साहित्य साधना, नर नारायण की प्रत्यक्ष एवं परोक्ष सत्योपलब्धि की आनन्दानुभूति से अनुप्राणित है। वे अदृष्ट एव प्रत्यक्ष का निर्धारण, भावात्मक एवं ज्ञानात्मक मनुष्यत्व की स्थापना के लिए करते हैं। वे अपने जीवन में केवल तत्त्व का ही अनुसन्धान नहीं करते, बल्कि देश, जाति और समाज का किस प्रकार से अभ्युत्थान होगा, इसका चिन्तन करते हैं। बंकिम चन्द्र ने अपने लेखों में इसका स्पष्टीकरण किया है—काव्य का मुख्य उद्देश्य नीति-ज्ञान नहीं है, किन्तु नीति-ज्ञान का जो उद्देश्य है, काव्य का भी वही उद्देश्य है।' उनका कथन है कि जो लोग

कुकाव्य का प्रणयन करके दूसरों के चित्त को कलुषित करने की चेष्टा करते हैं, वे चोरों की तरह मनुष्य जाति के शत्रु हैं, एवं उन्हें चोरों की तरह शारीरिक दण्ड द्वारा दण्डित करना विधेय है। बंकिम के उपर्युक्त कथन से उनके उद्देश्य और मनोवृत्ति का सरलतया परिचय प्राप्त किया जा सकता है। वे पूर्ण मनुष्यत्व की स्थापना करने में व्यस्त थे इसीलिए धर्म में ध्यानावस्थित थे उनकी धारणा थी कि धर्म का लक्ष्य मनुष्य के मनुष्यत्व की सिद्धि है। सम्भवतः इसीलिए बकिम के उपन्यासों में आदर्शवाद की प्रधानता है। वे ज्ञानी चिन्तन शील, समाज संस्कारक थे। उनकी प्रतिभा देशप्रेम एव समाज-सगठन में ही पल्लवित हुई हो, ऐसा नहीं, उन्होंने स्वधर्म और परधर्म की निष्पत्ति भी की है। फलतः उनकी दार्शनिक मीमासा में केवल विश्लेषणी शक्ति ही नहीं सर्जनी शक्ति भी है। श्री रमेश चन्द्र दत्त महाशय ने वग साहित्य के इतिहास में युगप्रवर्त्तक बकिम के विषय में उल्लेख किया है:—

'The greatest man of the nineteenth century'

उनके साहित्य का सहृदयता से अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उनकी प्रतिभा अघटन घटन पटीयसी' है। देशात्मबोध उनकी प्रतिभा का मूल स्रोत है। 'बन्दे मातरम्' के मन्त्र द्रष्टा-ऋषि बकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय के प्रथम उपन्यास 'दुर्गेश नन्दिनी' में साहित्यिक चेतना है। यह अगरेजी रोमान्स की तरह आबद्ध आदर्श का आराधक है। 'मृणालिनी, 'युगलांगुरीय' एवं 'राधा रानी' एक ही आदर्श में संवद्ध हैं। स्वदेश प्रेम का जाग्रत स्वरूप सर्व प्रथम 'मृणालिनी' में दिखाई देता है। 'कपाल कुण्डला' एक श्रेष्ठ काव्य है। तदुपरात समाज की समस्याओं और चरित्र विषयक रीति नीति से अनु प्राणित होकर बकिम ने 'विष-वृक्ष, 'चन्द्रशेखर' तथा 'कृष्ण कान्त केविल' का प्रणयन किया है।, 'आनन्द मठ' तथा 'राज सिंह' देशात्मबोधक उपन्यास हैं। 'देवी चौधरानी' तथा 'सीता राम' में धर्म समस्या की प्रधानता है। इन उपन्यासों के अध्ययन के बाद यह धारणा अनायास बन जाती है कि वे वग साहित्य के युग प्रवर्त्तक प्रतिष्ठाता

हैं। परन्तु उनकी दृष्टि नव जाग्रत शिक्षित मध्यवित्त वर्ग तक ही सीमित रही। इसका कारण सम्भवतः यह था कि बंकिम युग में पाश्चात्य संस्कृति के सम्पर्क से मध्यवित्तवर्ग की जीवन धारा किसी निश्चित प्रणाली मे प्रवाहित नहीं हुई थी। सामन्त-समाज विलुप्त हो गया था, किन्तु उसकी स्मृतियाँ ज्वलन्त थीं। अतीत का शौर्य वीर्य नव जाग्रत शिक्षित समाज को, आन्दोलित कर रहा था। इसका पर्याप्त परिचय बंकिम के उपन्यासों से मिल सकता है।

बंकिम चन्द्र की मृत्यु के समय रवीन्द्रनाथ की अवस्था ३२ वर्ष की थी। रवीन्द्र नाथ का प्रथम उपन्यास 'बौ ठाकुरानीर हाट' है, एवं द्वितीय उपन्यास 'राजर्षि' है। सफलता की दृष्टि से उनका 'चोखेर बाली' (आँख की किरकिरी) उपन्यास सफल हुआ है।

अस्तु, बंकिम के समय से रवीन्द्र के समय में सामाजिक आचार-व्यवहार बहुत कुछ परिवर्त्तित एवं परिवर्धित हो चुका था। अतः बंकिम और रवीन्द्र के उपन्यासों मे विभिन्नता होना स्वाभाविक है। परन्तु 'बौ ठाकुरानीर हाट' तथा 'राजर्षि' ऐतिहासिक आदर्श पर रचित हैं। इनमें ऐतिहासिक घटनाओं एवं चरित्र की विचित्रताओं का पूर्णतया विकास नहीं हो पाया। इसका कारण यह था कि उन्हें जीवन की तब तक गहरी अनुभूतियाँ नहीं हो पाई थीं। उनकी आयु, इन उपन्यासों के प्रणयन के समय लगभग २० या २४ वर्ष की थी। गुरुदेव ने इसे अपनी 'जीवन स्मृति' में स्वीकार किया है। उनका कथन है कि बचपन से तो मैं बाहरी लोगों के सम्पर्क से बहुत दूर एक संकुचित सीमा में आबद्ध रहता था, भला लिखने का सबल मिलता तो कैसे मिलता।

गुरुदेव के लब्ध प्रतिष्ठित उपन्यास हैं 'चोखेर बालि' 'नौकाडूबी', 'गोरा' 'चतुरंग' 'घरे बाइरे' 'योगा योग' तथा 'शेषेर कविता आदि। 'चोखेर बाली' बँगला साहित्य का सामाजिक उपन्यास है। इसमें मानव-मन की मूल वृत्तियों एव सामाजिक संस्कारों से द्विधा एवं अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न करने वाली समस्याओं का उन्मीलन हुआ है। यह मनस्तत्व का विश्लेषणात्मक उपन्यास है। इससे पूर्व वंग साहित्य में घटना प्रधान

उपन्यास प्रचलित थे। इस उपन्यास की घटनायें मनोविकास में बड़ी सहायक हुई हैं। 'चोखर बाली' में प्राच्य और पाश्चात्य आदर्शों का समन्वय हुआ है। चोखेर बाली, हमारे समाज की व्याधियों तथा उनके प्रतिकार के लिए तर्क वितर्क प्रस्तुत करती है। इस उपन्यास के मुख्य पात्र आशा, विहारी, महेन्द्र एव विनोदिनी हैं। इन्हीं पात्रों की चारित्रिक समस्याओं तथा सामाजिक विषमताओं को लेकर अन्तर्द्वन्द्व जटिल हुआ है। आशा अस्पष्ट छाया मय है। महेन्द्र उन्मत्त तथा उद्भ्रान्त सा है। उसका उद्वेग विनोदिनी के निकट निष्प्रभ प्रतीत होता है। इस उपन्यास में लेखक ने प्रत्येक घटना को मनोवैज्ञानिक ढग से विकसित किया है। विनोदिनी की वासना अतृप्त है। उसका यौवन पूर्णतः भोग्य बनाने के लिए अधीर है। फलतः उसका यौन-जीवन उसके व्यक्तित्व को अत्यन्त उलझन में डाल देता है। महेन्द्र का यौवन उसके निकट भोग्य था और उसका यौवन महेन्द्र के निकट भोग्य था, परन्तु घटना चक्र से वह अतृप्त हो रही। विनोदिनी महेन्द्र के निकट अपना प्रेम पाश बड़े कौशल से फैलाती है, *परन्तु शीघ्र ही उसे आभास होने लगता है कि महेन्द्र दुर्बल है।* उस पर निर्भर रहने से उसका जीवन चल नहीं सकता। अतएव उसका मन ज्यों ज्यों महेन्द्र की तरफ से उचटने लगा त्यों त्यों वह विहारी की ओर आकर्षित होने लगी। शनैः शनैः विनोदिनी का अनुराग, शरच्चन्द्र की किरणमयी की तरह, विहारी के प्रति विकसित होने लगा। विनोदिनी क शब्दों में उद्दाम प्रेम का ज्वार सा आया है। वह अपनी वासना को निम्नलिखित शब्दों में अभिव्यक्त करती है। ऐसी परिस्थिति में योगी को भी चित्त वृत्ति विचलित हो जाती है। विनोदिनी विहारी के पैर को अपने वक्ष स्थल पर रख कर आलिंगन करती है। गुरुदेव रवीन्द्र प्रबल आसक्ति एव अन्तर्गूढ़ व्यथा का विशदीकरण करते हैं। 'हे देवर' 'एके नारे पाथरेर देवता' की तरह पवित्र न होओ, मन्द को प्यार करके मन्द (निकृष्ट) बनो''

किन्तु बिहारी के सन्निकट वह उपेक्षित होती है। बिहारी का चरित्र अचल एव गभीर है। विनोदनी की वासना का उद्दीप्त रूप इलाहाबाद में

दिखाया गया है। इलाहाबाद के निर्जन घर में बैठकर विनोदिनी अपने हृदय की सारी गुप्त बातें बिहारी को बतला देती है। बिहारी के विशुद्ध हृदय ने उसे मान लिया। विनोदिनी प्रेमको सार्थक करने के लिए उससे प्रेम करती है, ऐसा नहीं, वह प्रेम के परिणत मे परिणय करना चाहती है। सहसा उसके मन में विवेक का उद्रेक होता है—छिः छि यह बात याद करने से लज्जा होती है। मैं विधवा हूँ, मैं निन्दिता हूँ, सारे समाज के सामने मैं तुम्हें लाञ्छित करूँ, यह कदापि नहीं हो सकता...छि छि, विधवा के साथ तुम विवाह करोगे! ..

यह विनोदिनी का दूसरा स्वरूप है। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ का यह उपन्यास विनोदिनी के भ्रूविलास एवं उद्दीप्त यौवन के संवेग से सजीवित हो उठा है। विनोदिनी की कामुकी वृत्ति पाठकों के हृदयों पर अपना अधिकार कर लेती है। वह वासना में जलती है परन्तु आदर्श का पालन भी करती है; इसलिए वह पाठकों की सहानुभूति प्राप्त कर लेती है।

'नौका डूबी' उपन्यास रोमाण्टिक घटना पर निर्भर है। इसकी कथा अत्यन्त रोचक है, सरल एव प्रवाहमयी है, परन्तु यह स्वतः स्फूर्त रचना नहीं मालूम होती। इसका कारण यह है कि लेखक ने घटनाओं को मनोवैज्ञानिक आधार पर सकलित नहीं किया है, वरन् दैवी घटनाओं का समावेश करके आधुनिक युग के वैज्ञानिक मन को सदिग्ध कर दिया है। इसकी कथा आकस्मिक घटना के पाश में बँध गई है। फिर भी रवीन्द्र की प्रतिभा ने अपने कौशल से नलिनाक्ष और कमला के मिलन दृश्य में अत्यन्त रहस्यमयी आनन्दानुभूति का निर्देश किया है।

रवीन्द्र नाथ का तीसरा सुविख्यात उपन्यास है 'गोरा'। बंगभाषा का उत्कृष्ट उपन्यास है। इसमें शिक्षित बंगाली मध्यवित्त समाज की समस्त चिन्ताधाराओं का सम्मिलन हुआ है। धर्म और जाति के नये आदर्शों की प्रतिष्ठा हुई है, और पुराने आदर्शों का मूल्यांकन हुआ है। भाँति-भाँति के तर्क उठते हैं और उनका यथा सम्भव निर्धारण होता है। अनुभूति की प्रखरता, समाज एव राष्ट्र की अगणित समस्यायें गोरा में छाई हुई हैं। ऐसा विशाल उपन्यास, जाग्रत जीवन की जाग्रत चिन्तन-धारा का तथा जीवित राष्ट्र की जीवित जाति का मानदण्ड है, प्रकाश स्तम्भ है।

'गोरा' उपन्यास में व्यक्तिगत जीवन के अलावा वृहत्तर सामाजिक सत्ता की भी स्थापना हुई है। इस उपन्यास का प्रत्येक पात्र वृहत्तर सत्ता के प्रति अत्यन्त सवेदना शील है। प्रत्येक पात्र अपनी-अपनी चिन्ता धारा का प्रतिपादन करता है। इस उपन्यास की कथा वस्तु युक्ति और तर्क से आच्छादित है। परेश बाबू की युक्तियाँ और तर्क सत्यानुगत जीवन की आवाज़ बुलन्द करते हैं, विनय का भावुक हृदय द्विधा से व्यापृत होने से ऐसी भाषा बोलता है जिसे भाव विभोर का प्रलाप कहना अधिक उपयुक्त होगा। गौर मोहन की भाषा भारतीय आत्मबोध का उद्बोधन है। जितना गोरा तर्क करता है उतना ही उसका आत्मबल बढ़ता जाता है। वह जो कहता है, वही करता है। उसका विस्तृत कार्यक्रम मौखिक नहीं है, प्रत्येक कार्य उसके प्राणों की स्फूर्ति एव ओजस्विता से अनुप्राणित होकर चरितार्थ होता है। गोरा का विनय से सम्बन्ध है तथा आनन्दमयी के प्रति उसका श्रद्धा भाव भी कम नहीं है। गोरा की समस्त युक्तियों और तर्क-वितर्कों के पीछे सबल प्राणों की प्रभविष्णुता है एव सुकुमार प्राणों का आन्दोलन है। रवीन्द्रनाथ का यह उपन्यास वग साहित्य में अतुलनीय है। ब्राह्म समाज के भीतर और बाहर जिन आदर्शों को लेकर धार्मिक आधार एव अनुष्ठानों के विषय में तर्क, वितर्क होता था। उन्हें लेखक ने अपने इस उपन्यास में चित्रित किया है। गोरा में सम सामयिक परिस्थितियों की स्पष्ट छाप पड़ी है। प्रेम चन्द के 'गोदान' में भी तर्क वितर्क हुए हैं परन्तु गोरा की चिन्तन धारा विस्तृत समाज में क्रान्ति और प्रगति का जाल बिछा देती है। लेखक की बलिष्ठ चेतना 'गोरा' का रूप धारण करके विश्व की समस्याओं के समाधान करने की क्षमता रखती है। गुरुदेव रवीन्द्र नाथ की यह सृष्टि अभूत पूर्व है। इसको पढ़कर ही इसके आनन्द का अनुभव किया जा सकता है।

"चतुरग" और "शेषेर कविता" की रसोपलब्धि बुद्धि साध्य है। इसमें सहज भाव से कथा का रसमयी प्रवाह प्रवाहित नहीं होता, बल्कि विवेक के बल से चिन्तन करने पर सत्योपलब्धि होता है, और तत्पश्चात् आनन्दानुभूति। यह बुद्धि व्यापार से ही साध्य है। 'शेषेर कविता रवीन्द्र नाथ की सार्थक सृष्टि है। कवि की कल्पना का अतुलनीय ऐश्वर्य, काव्योप

न्यास का सौष्ठव, औदार्य एवं अर्थ-गौरव की महिमा, इसमें पूर्णतया प्रस्फुटित हुई है।

'शेषेर कविता' की तरह के उपन्यास वंग साहित्य में दुर्लभ हैं। उपन्यास के प्रसार की परिधि संकुचित है। मानव के परिवार की अवस्था, संग्राम का कोलाहल; क्रिया शील पृथुल पृथिवी की स्पर्शानुभूति, समुच्च आदर्श की प्रेरणा; 'शेषेर कविता' में मिलना मुश्किल है। हाँ, 'गोरा' उपन्यास में अवश्य उपर्युक्त अनुभूतियों का उद्रेक हुआ है। 'शेषेर कविता' की पृष्ठ भूमि उच्च मध्य वित्तवर्ग की लीला भूमि है। इसमें सुशिक्षित नर नारियो के प्रेम और यौवन, के उन्माद की वैचित्र्यपूर्ण लीलाओं का रहस्योद्घाटन हुआ है। रवीन्द्र की भावुकता इतनी मनोमोहिनी है कि इसे पढ़ते पढ़ते ऐसा प्रतीत होता है, मानो लोक से लोकातीत आनन्द में समाधिस्थ हो गये हैं। ऐसे लोक में स्वर है, संगीत है, कविता है, नृत्य है; साथ ही सवेदना शील प्राणों का मधुर स्पर्श है। भाषा की व्यञ्जना तथा भावों की भंगिमा अपना अवगुंठन धीरे-धीरे उठाती हुई मिथुन अनुभूति की सिहरन एव प्रथम प्रेम की धड़कन का उन्मीलन करती है। रवीन्द्र की ये तीनों कृतियाँ दुई बोन, 'मालञ्च' तथा 'चार अध्याय' शेषेर कविता की तरह भाषा और भावों से मन्त्रमुग्ध करती हैं। 'दुईबोन', मालञ्च तथा 'चार अध्याय' गुरुदेव रवीन्द्र नाथ की मोहिनी सृष्टि हैं। रवीन्द्र नाथ का साहित्य भाषा का जादू डालकर अपना दास बना लेता है तथा भाव एवं नृत्य का अभिनय करके प्राणियों को भाव विभोर कर देता है। गुरुदेव के काव्य और साहित्य का रसास्वादन करने के लिए दिल और दिमाग की आँखें खुली रहनी चाहिए।

वर्तमान वंग साहित्य में रवीन्द्र नाथ का प्रभाव अत्यधिक व्यापक है। उनकी कवि कल्पना हमारी रस-पिपासा को सन्तुष्ट करके विशुद्ध साहित्य की आसक्ति का उन्मेष करती है। रवीन्द्र नाथ की श्रेष्ठता उनकी कविताओं और गीतिकाव्य से लक्षित होती है। गीतिकाव्य के बाद उत्कृष्टता की दृष्टि से छोटी कहानियों का स्थान श्रेष्ठ है! उनकी उपन्यास और नाटकों की सृष्टि यद्यपि उपेक्षित नहीं है, परन्तु इनमें उन्हें गीति काव्य और छोटी कहानियों की तरह सफलता नहीं मिली। इसका कारण स्पष्ट है, वे स्वभाव

सिद्ध कवि हैं, अतएव उनका गीति-काव्य सरलतया, रससृष्टि करने में समर्थ हुआ है। यह कवि का स्वाभाविक व्यापार है। गीति काव्य और छोटी कहानियों मे कवि रवीन्द्र की काव्य धारा स्वतः स्फूर्त होकर प्रवाहित हुई है। उपन्यास और नाटकों में उन्होंने अपने कवि धर्म के विरुद्ध चलकर जो सिद्धियाँ प्राप्त की हैं वे उनको सर्वांगीण प्रतिभा की द्योतक हैं। रवीन्द्र नाथ की प्रतिभा और अनुभूति मानव जीवन में व्याप्त होकर प्रकृति प्रीति में भावाविष्ट हुई है। 'नैवेद्य' की कवितायें इन्द्रिय से इन्द्रियातीत आनन्द का स्वर मुखरित करती हैं।

गीताञ्जलियों में कवि को, नैवेद्य की तरह पूर्ण आनन्दोपलब्धि न होने पर भी, अनुभूत सत्य का साक्षात्कार होता है। कवि का यह अनुभूत सत्य, तात्विक ही नहीं, सौन्दर्य-अनुभूति की सत्योपलब्धि है। इसे कवि रवीन्द्र मानव के प्राणों में प्रतिष्ठित करता है। कवि के निकट जो वस्तु सुन्दर है, वही कवि का अनुभूत सत्य है। यह अनुभूति के अगणित सस्कारों के फलस्वरूप काल्पनिक होकर भी सत्य मान लिया जाता है। क्योंकि सौन्दर्य की अनुभूति का सस्कार कवि के मानस पटल पर अकित रहता है। कवि इसी सस्कार को कल्पना के द्वारा आकाश के इन्द्र धनुष में, फूल के रूप रग में, पक्षियों की काकली मे, सागर की उत्ताल तरगों में, पर्वतों के उत्तु ग शिखरों में प्रतिफलित करता है। कवि रवीन्द्र की यह सौन्दर्यानुभूति एव सत्योपलब्धि 'बलाका' में द्विधाव्यापृत हो गई है। कवि को गीताञ्जलि में आध्यात्मिक तत्त्व की प्राप्ति के लिए मोह होता है। वह 'बलाका' में आकर द्विधाग्रस्त हो जाता है। परन्तु यह कवि का स्थायी भाव नहीं है। कवि का स्थायी भाव है:—

"आमि ना होले भुवनेश्वर, तोमार प्रेम होतो ये मिछे ." अर्थात्

कवि रवीन्द्र नाथ की भक्त आत्मा कहती है कि 'हे! भुवनेश्वर मेरे न होने से तुम्हारा प्रेम व्यर्थ हो जाता।' इसी स्थायी भाव के आश्रय से वे विश्व मानव के हृदय आसन पर अधिष्ठित है और अधिष्ठित रहेंगे।

विश्व साहित्य की विभूति

विश्व-कवि लोक के अन्तर्गत लोकोत्तर सृष्टि करने वाले होते हैं। उनकी भाव प्रवणता सौन्दर्य को साकार करती है पृथ्वी पर अभूतपूर्व सृष्टि करना चाहते हैं, सौन्दर्य का आकार निर्दिष्ट करना चाहते हैं, मानव–जीवन में महत् भाव की प्रतिष्ठा करना चाहते हैं अथवा साहित्य–सगीत एव ललितकला में प्राणों का शाश्वत नाद मुखरित करना चाहते हैं, वे किसी देश-विशेष तक सीमित नहीं रहते, और न जातिगत एवं धर्मगत सकुचित मनोवृत्तियाँ ही उनकी वाणी को कुंठित करने में समर्थ होती हैं महामानव की आत्मा महान् होती है। उसके प्राणों की भावधारा एवं नाड़ीमण्डल का स्पन्दन किसी देश विशेष की मान्यताओं में ही आबद्ध नहीं रहता, बल्कि विश्वमानव की शिरा-शिरा एव धमनी-धमनी का स्फुरण उसकी सृष्टि की मूल चेतना बनकर विश्व के क्लान्तपथिकों में नव जीवन का सचार करती है। अनन्त आकाश की नीलिमा मे विहार करने वाले सूर्य की हँसी को राजतंत्र की छद्मवेषिणी कोई जादूगरनी स्वैरिणी अपने चाँद सितारों वाले दुपट्टे से ढँक नहीं सकती। अपने इष्ट के लिए और दूसरों के अनिष्ट के लिए तंत्र-मन्त्र को प्रक्रिया का मायाजाल फैलाने वाले तांत्रिक अनन्त आकाश की नीलिमा को एव प्रशान्त महासागर की गम्भीरता को तथा सदा बहारों के फूलों की हँसी को छीनने मे कदाचित सफल नहीं होंगे। तात्पर्य यह है कि अनन्तता और नित्य नूतन-सुन्दरता अनन्त क्षणों के अनन्त आनन्द-प्राप्ति का स्रोत हैं। प्रातः स्मरणीय पूज्य गोस्वामी तुलसी दास के राम 'काम' हैं, लक्ष्मण बसन्त हैं और सीता रति हैं। राम की यश पताका के केतु जीव रूप लक्ष्मण बसन्त की भाँति आगे-आगे सकाम प्राणियों को मदन-मोहन राम के आने की सूचना देते हैं। इसी अखण्ड और नित्य नूतन सौंदर्य का निर्देश सर एडविन अर्नाल्ड ने राधा माधव के प्रसग में प्रस्तुत किया है :—Beautiful flowers please, whatever their name and country; and so far as any bri-

ghtness or fragrance may have been preserved from the Aryan original in this paraphrase, it will no doubt be recognized by the reader of intelligence.

जो केवल अपने ही देश को समृद्धिशाली बनाने के लिए धनोपार्जन करता है, अपने देश के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए दूसरे देशों को पददलित करता है तथा विजय प्राप्त करने के लिए देश देशान्तर में जय-पताका लिए घूमता फिरता है, वह केवल एक देशीय परिधि तक ही सीमित रहता है। उसमें विश्व बन्धुत्व का भाव नहीं जाग्रत हो पाता। भावुक शिल्पियों की सृष्टि को ध्वस करने वाला महमूद गजनवी केवल गजनी की शोभा बढ़ाना चाहता है। उसे मन्दिर तोड़कर राजमन्दिर की साज सज्जा करना अभीष्ट है, उसे मूर्त्ति रक्षक की अपेक्षा मूर्त्तिभजक की ख्याति में अधिक विश्वास है, क्योंकि वह राजमद से उन्मत्त है। सम्पत्ति को हड़प जाने के लिए वृकोदर है तथा दूसरों के अभ्युदय एव ऐश्वर्य के प्रति असहिष्णु है। मन्दिर, मसजिद और गिर्जा को धराशायी करने वाला इन्सान चाहे जिस धर्म का अनुगामी हो नृशस है, क्योंकि मन्दिर, मसजिद और गिर्जा मानव के विश्वास, शिल्प एव कला के प्रतीक हैं। उन्हें ढहाना शिल्पी की आत्मा का हनन करना है, उन्हें नष्ट भ्रष्ट करना भावुक मानव का कलेजा नोचना है, उन्हें विद्रूप करके विजयी श्री का वरण करना समस्त मानवता के विरुद्ध विद्रोह की आग भड़का कर अपनी मृत्यु को निमत्रण देना है। सोमनाथ के मन्दिर को लूटने वाला तथा उसके शिल्प-विधान को विनष्ट करने वाला आततायी महमूद गजनवी केवल शिवप्रतिमा को ही भजित नहीं कर रहा था, बल्कि एक शिल्पी, कलाकार एव कवि की कपाल क्रिया कर रहा था। ऊँचे ऊँचे मन्दिर, मसजिद और गिर्जा के शिखरों को मिट्टी में मिलाने वाला कितना बड़ा आततायी होता है, इसकी कल्पना वर्त्तमान कालिक प्रजातन्त्र के युग में सरलतया की जा सकती है। फिरदौसी से शाहनामें की सृष्टि कराने वाले महमूद गजनवी को कदाचिद् ही विजेता कहा जा सकता है। उसने

फ़िरदौसी को प्रति शेर पर एक स्वर्ण अशर्फी देने का वचन दिया था। परन्तु उसने स्वर्ण अशर्फी के बजाय चाँदी का सिक्का दिया। कवि फ़िरदौसी ने उसे लेने से साफ इन्कार कर दिया। कहा जाता है कि इसी शोक से कवि का हृदय टूट गया और वह कुछ दिनों के बाद संसार से चल बसा। ऐसे विजेता भले ही अपने देश में चन्द हाँ हुजूर मुसाहबों से पूजे जाँय, परन्तु दुनियाँ के इतिहास में उनके नाम पर लोग थूकते हैं और उनकी काली करतूतों का पर्दाफाश करने के लिए संसार के बड़े बड़े मनीषी-विद्वान बद्धपरिकर रहते हैं।

फिरदौसी ने वीर-प्रशस्ति का जयगान किया। उसकी भावुकता एवं ओजमयी कविता का बड़े से बड़े कवि लोहा मानते हैं और बड़े आनन्द के साथ उसका रसास्वादन करते हैं। परन्तु पाषाण-हृदय लुटेरा गजनवी उसके स्पर्श-कातर-मन की भावुकता का सम्मान न कर सका। ऐसे जालिम इन्सान के खिलाफ मान हानि का मुकदमा भी कवि ने नहीं दायर किया; परन्तु इन्सानियत का प्यारा इन्सान ऐसे जुल्म को बरदाश्त नहीं कर सकता। दुनिया की बहुत बड़ी अदालत में इसका फैसला हो सकता है, किन्तु कवि की जीत न होती, जीत होती तो गजनवी की होती। क्योंकि उसके पास अतौल सम्पत्ति थी। सन्ताप से फिरदौसी के प्राणपखेरू उड़ गये किन्तु दुनिया के समक्ष विश्वजनीन करुणा का आदर्श प्रस्तुत कर गये। आततायी की बर्बरता के समक्ष कवि की भावुकता को घुटने टेक देने पड़े। परन्तु गजनवी की राज्य सीमा केवल गजनी तक ही रही, और शायद वह भी लुप्त हो गई; किन्तु फिरदौसी के राज्य की सीमा प्रत्येक मानव के प्राणों में सदा सर्वदा प्रशस्त रहेगी। इसका कारण यह है कि जिन्होंने सुन्दर सत्य और आनन्द की सृष्टि करने के लिए माधुर्य ओज एवं रसात्मकता का संचार किया है; वे किसी देश विशेष के ही अधिवासी नहीं होते, बल्कि वे सम्पूर्ण विश्व के अधिवासी होते हैं। उनकी सृष्टि चिन्मयी, कल्याणमयी एवं चिरंजीवी होती है।

गेटे और रवीन्द्रनाथ विश्वसाहित्य की विभूतियाँ हैं। उनके साहित्य और शिल्प-विधान पर अखिल मानवता को गर्व है। इन महान् विभूतियों से विश्वसाहित्य की सरस्वती की गम्भीर सरस मन्द्रिल ध्वनि अवनि अम्बर

को सनाथ करती है। इन महाकवियों की मंगलमयी ध्वनि से हम सम्भवतः उस समय परिचित होते हैं जब कि ये दोनों कवि महाकवि कालिदास के अमरकाव्य 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अमर सन्देश का सारगर्भित भाषा में विशदी करण करते हैं।:—भारत के महाकवि की सत्योपलब्धि एवं सौन्दर्यानुभूति की गुणग्राहिता गुरुदेवने 'प्राचीनसाहित्य' में जितनी विशदता से की है, सम्भवतः प्रसिद्ध जर्मन-कवि गेटे ने भी की हो, परन्तु उसकी निम्नलिखित सुललित पंक्तियाँ तो संसार-प्रसिद्ध हैं ही:—

Wouldst thou the young yaar's blossoms and the fruits of its decline;

And all by which the Soul is charmed, enraptured feasted, fed ?

Wouldst thou the earth and h-aven it self in one sole name combine ?

I name thee, O Shakuntala and at ance is said.

यूरोप के कवि कुल गुरु गेटे (Goethe) ने केवल एक ही श्लोक में 'शकुन्तला' की समालोचना की। उसकी रसानुभूति की मार्मिक अभिज्ञता की सत्योपलब्धि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ को पूर्णतः हुई है अथवा अंशतः; इसकी विवेचना करने की चेष्टा करना लेखक का बालसुलभ चापल्य होगा। फलतः गुरुदेव रवीन्द्र के ही शब्दों को भावुक पाठकों के समक्ष समुपस्थित करना समीचीन प्रतीत होता है:—

"ताँहार श्लोकटि एकटि दीपवर्त्तिकार शिखार न्याय क्षुद्र, किन्तु ताहा दीपशिखार मतोइ समग्र शकुन्तलाके एक मुहूर्तें उद्भासित करिया देखाइबार उपाय। तिनि एक कथाय बोलियाछेन, केहो यदि तरुण वत्सरेर फूल ओ परिणत वत्सरेर फल, केहो यदि मर्त ओ स्वर्ग एकत्र देखिते चाय, तबे शकुन्तलाय ताहा पाइबे।"

रवीन्द्र और गेटे,—विश्व-साहित्य की महान् विभूतियाँ महाकवि कालिदास की शकुन्तला को लौकिक और अलौकिक सौन्दर्य का केन्द्र बिन्दु

समझ कर विवेचना करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने राजकुमार भरत और राम के मिलन में जीव और ब्रह्मकी समीपता का उल्लेख किया है, अतएव लौकिक कामनाओं का सत् चित् स्वरूप अलौकिक सत्ता—सत् चित् आनन्दमयत्व, में समाविष्ट होने को आतुर है।—

पाहि नाथ कहि पाहि गुसाईं। भूतल परे लकुट की नाईं॥

जीवात्मा रूप भरत सीताराम की अनिर्वचनीय शोभा में भाव-विभोर हो गये हैं, क्योंकि वे जिस अलौकिक रूप का अवलोकन कर चुके हैं, वह अन्तरात्मा की ज्वालाको शान्त करता है।

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥

जैसे वेदों में ईश्वर और जीव का स्वरूप एक ही तरह का वर्णन किया गया है, वैसे ही तुलसीदास के भरत और राम एक ही रूप रंग के वर्णन किये गये हैं। परन्तु जीवमें 'आनन्द' का अभाव होने से उसमें खिन्नता रहती है और ब्रह्म में अखण्डता एव नित्य नूतनता होने से शाश्वत आनन्दमयता सर्वदा विद्यमान रहती है। परन्तु इस अनिर्वचनीय प्रेम के स्वरूप का वर्णन करने के लिए कवि केवल अर्थ और अक्षर का बल रखता है, नट तो ताल गति के अनुसार नाचता है, वहाँ प्रेम के स्वरूप को प्रकट करने के लिए अक्षर नहीं मिलते—महाकवि कालिदास का दुष्यन्त केवल सूत्ररूप में शायद इसीलिए कहता है:—"अये, लब्ध नेत्रनिर्वाणम्"

अतएव महाकवि गेटे ने लौकिक और अलौकिक विभूतियों का विश्लेषण काव्य की अखण्डता और नित्य नूतनता के लिए प्रस्तुत किया है।

The things of heaven and earth contain such a wealth of value that only the organs of all beings jointly can encompass it.

अर्थात् पार्थिव और स्वर्गीय वस्तुयें मूल्यवान सम्पत्ति का ऐसा भण्डार रखती हैं जिसे केवल सम्पूर्ण सत्ताओं के उपादान मिलकर ही प्राप्त करने में समर्थ होते हैं। इस तत्त्व की उपलब्धि रवीन्द्रनाथ और गेटे के काव्य में पूर्णतः अभिव्यक्त हुई है। जो सत्ता विश्व सृष्टि की कर्तृशक्ति है और जिसमें

परिचालन की प्रबलता है, वही जीव की देह में अन्तर्यामीरूप में अवस्थित रहती है। यह सत्ता जीव की आत्मा है। इस अन्तर्यामी सत्ता को जान लेने से स्वर्गीय और पार्थिव सत्योपलब्धि की अनुभूति सहज में हो जाती है। सूक्ष्म से सूक्ष्मतम वस्तुओं में छिपी हुई एव रहस्यमयी प्रतीत होने वाली सुन्दरता से नित्य और अखण्ड सम्बन्ध हो जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने जिसे 'अन्तर्यामी अमृत आत्मा' कहा है, उसे गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ने 'आमार परम अन्तरग सगी कहकर हम लोगों से उसका परिचय कराया है। प्राणियों का अहम्भाव जब नित्य साक्षी एव परम अन्तरंग साक्षी के केन्द्र में स्थापित हो जाता है, तब दृष्टि पर का आवरण हट जाता है और अखण्ड दृष्टि के प्रकाश से जगत के सत्यरुप एव आनन्दरूप का उद्घाटन होता है। ब्रह्म सूत्र में भगवान् वेद व्यास ने सृष्टि को ब्रह्म की लीला वर्णन की है। रवीन्द्रनाथ की सृष्टि में भी हमें इसी सत्य का साक्षात्कार होता है। हम उनकी सरस्वती में नाना प्रकार के भावों के अन्तर्गत नित्यसाक्षी की (अखण्ड लीला) का दर्शन करते हैं।

'नित्य साक्षी' के समीप रहने से कवि को विराट् विश्व एक महाकाव्य के रूप में दिखाई देता है। महाकवि के इस विश्वकाव्य की ओर संकेत करके वैदिक ऋषि ने कहा है:—

'देवस्य पश्य काव्यम् ममार न जीर्यति,

वह इतना समीप है कि उसे छोड़ते नहीं बनता, वह इतना अन्तरग है कि उसकी निर्निमेष दृष्टि से प्रतीक्षा नहीं की जाती, तथापि यही देव का (ब्रह्म का) काव्य है। यह न कभी मरता है और न कभी जीर्ण होता है। रवीन्द्रनाथ ने इसी 'देवस्य काव्यम्' की उपलब्धि की है और महाकवि गेटे ने इसी की सौन्दर्यानुभूति। इन दोनों विश्वकवियों की भावुकता का घनिष्ठ परिचय महाकवि कालिदास की शकुन्तला में मिलता है, क्योंकि शकुन्तला में परिणयोन्मुख प्रणय स्वभाव सौन्दर्य एव मंगलसौन्दर्य में परिणत हुआ है। भारतवर्ष का यह पुरातन कवि प्रेम को ही प्रेम का चरम गौरव नहीं समझता, वरन् मगल को ही प्रेम का परम लक्ष्य समझता है। गुरुदेव

रवीन्द्र नाथ के अनुसार कालिदास की काव्यसृष्टि गृहधर्म के कल्याण बन्धन तथा निर्लिप्त आत्मा के ग्रंथि-मोचन के साथ समन्वित है। 'कालिदास के अनुसार प्रेम की सार्थकता विवाह में और विवाह की सार्थकता सन्तानोत्पत्ति के मांगलिक व्यापार में है।' महाकवि गेटे का काव्यविषयक सिद्धान्त बहुत कुछ इसी सिद्धान्त के साथ सामञ्जस्य रखता है:—

"Every poem is in a sense a kiss bestowed upon the world, but mere kisses do not produce children."

सम्पूर्ण 'कुमार सम्भवम्' कुमार जन्म-विषयक महत् लक्ष्य की समीचीन उपक्रमणिका है। गेटे की समालोचना का अनुगमन करके गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ने शकुन्तला की विवेचना निम्नलिखित प्रकार से प्रस्तुत की है—

"शकुन्तला में आरम्भिक तरुण सौन्दर्य ने मंगल मय परम परिणति में सफलता लाभ करके मृत्यु लोक को स्वर्ग के साथ सम्मिलित कर दिया है।" महाकवि गेटे के ये शब्द विश्व साहित्य की सम्पत्ति हो गये हैं। इन शब्दों में उस महामानव की महान् आत्मा का प्रकाश पुंज जाज्वल्य मान होता है।

'विश्व-साहित्य' शब्द का प्रयोग सर्व प्रथम गेटे ही ने किया था। गेटे के ये विश्व साहित्य सम्बन्धी उद्गार २७ जनवरी सन् १८२७ को उद्घोषित हुए थे कि जातीय साहित्य का मूल्य क्रमशः कम हो रहा है, अब विश्व साहित्य का युग प्रारम्भ हुआ है। चिन्तन शील कवि की वाणी ने विश्व साहित्य की चिन्ता धारा, उसका आदर्श, जीवन की असामान्य गतिविधि, महिमान्वित व्यक्तित्व तथा अनन्त सौन्दर्य एवं जाग्रत यौवन की परिकल्पना की थी। परन्तु इस घोषणा एवं परिकल्पना के एक सौ तीस वर्ष बाद भी विश्व साहित्य का युग न आया। कुछ मनीषियों ने विदेशी साहित्य का अध्ययन करना प्रारम्भ किया किन्तु उसे हम विश्व-साहित्य की सुस्पष्ट संज्ञा नहीं दे सकते। विश्व साहित्य का अर्थ यह है कि ऐसा साहित्य जो किसी देश वा जाति तक ही सीमित न रहे; बल्कि उसका आवेदन पृथ्वी की प्रायः सर्वत्र अनुभूत मान्यताओं के समकक्ष देश काल निर्विचार भाव से प्रतिष्ठा प्राप्त करे। सामान्यतः विश्वसाहित्य से अभिप्राय यह है

कि पृथ्वी के सारे देशों के साहित्य की समष्टि। किन्तु गुण विचार का प्रश्न गौण होने से यह परिभाषा कुछ व्यापक क्षेत्र में फैल गई है। अतएव यह व्यापक संज्ञा विश्वसाहित्य के मूल आदर्श की सहायक नहीं हो पाती। जो सब ग्रन्थ, भाषा और देश की सीमा का अतिक्रमण करके पृथ्वी के भावुक रसिकों को आनन्द देने में समर्थ होते हैं तथा पृथ्वी की संस्कृति के भण्डार में संचित होकर जो पुस्तकें विभिन्न देशों में भाव विनिमय में सहायता देती हैं वही विश्वसाहित्य की सम्पत्ति एवं विभूति होती है।

जार्ज बर्नार्ड शा की पुस्तकों के अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि पाश्चात्य साहित्य में दुःखात काव्य को सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। शा साहब का कहना है कि विश्व साहित्य स्रष्टाओं ने अपनी प्रतिभा को 'हैमलेट' और 'डोन जुआँ' अर्थात् आदर्शवादी तथा स्वेच्छाचारी, दो प्रकार के व्यक्तियों के निर्माण में व्यय किया है। महाकवि शेक्सपियर ने हैमलेट की सृष्टि करके ऐसे आदर्श की प्रतिष्ठा की है जो संसार को चेतावनी देती है कि पाशविक भौतिक वाद आदर्शवाद को भले ही विच्छिन्न कर दे, परन्तु वह स्वयं भी मिटकर रहेगा। सम्भवतः इसीलिए डा० मिलर ने शेक्सपियर के नाटकों की आलोचना करते हुए उनसे आदर्शवादी नैतिक एवं आध्यात्मिक विषय खोज निकाले हैं। परन्तु इन दुःखान्त नाटकों में आध्यात्मिक वातावरण की परिकल्पना करना डा० मिलर जैसे आध्यात्मिक पादरियों की अपनी स्वतः निर्मित भावना ग्रन्थि है, जिसका उन्होंने शेक्सपियर के दुःखान्त नाटकों को आध्यात्मिक विवेचना में उन्मोचन किया है। वस्तुतः शेक्सपियर की नाटकीयता में आध्यात्मवाद का विनिश्चितार्थत्व सुस्पष्ट नहीं है। क्योंकि अधिकतर यह देखा जाता है कि 'हैमलेट' के पढ़ने वाले आदर्शवाद के विरोधी बन जाते हैं। मानव मन के द्वन्द्वों के झंझावात में शेक्सपियर की कला के अन्तर्गत कवि का व्यक्तित्व एकदेशीय रह गया है। सम्भवतः इसीलिए शेक्सपियर को सफल आदर्शवाद के चित्रण का अवसर नहीं मिला जो गोस्वामी तुलसीदास और मिल्टन को मिला है। यूनान के दार्शनिक अरस्तू का सिद्धान्त है कि दुखांत

नाटक कला का ध्येय यह है कि करुणा और भयानक भावनायें हमारे मानस में उत्पन्न तो की जायँ, साथ ही उनका विशुद्धीकरण भी होना आवश्यक है। इस दार्शनिक सिद्धान्त की प्रधानता हमें तुलसीदास मिल्टन रवीन्द्रनाथ एव गेटे में पूर्ण रूपेण प्राप्त होती है।

विश्वसाहित्य की काव्य धारा में अगणित भावनाओं की लहरें तरङ्गित दिखाई देती हैं। किन्तु रवीन्द्रनाथ और गेटे की अप्रतिम प्रतिभा के समक्ष श्रद्धा से मस्तक झुक जाता है। रवीन्द्र नाथ और गेटे का उल्लेख पहले किया जा चुका है। विश्वसाहित्य के प्रागण में रवीन्द्र नाथ की समानता एव तुल्ययोग्यता का कवि सहसा दृष्टिगोचर नहीं होता, क्योंकि सर्व साधारण कवियों में विशेषतः एक या दो उद्वेग प्रमुख होते हैं, वही स्थायि भाव बन कर काव्यको प्रेरणा देते रहते हैं। परन्तु विश्वकवि जीवन को सर्वभावों से वरण करते हैं; अतएव उनमें अगणित उद्वेगों का प्रसारण होता है; फलतः नश्वर मानव जीवन एक सम्पूर्ण नूतन अर्थ की उपलब्धि करता है। मानव जीवन को विस्तृत विश्व की पटभूमिका पर अधिष्ठित करने से सृष्टि हमें अर्थ हीन, निर्मम, एव असंगतिपूर्ण प्रतीत होती है। परन्तु इस सृष्टि के अन्तर्गत एक सुगम्भीर तात्पर्य, अन्तर्लीन सुषमा एवं अपूर्व सुसगति दिखाई देती है। ऐसे अवसर पर पृथ्वी की धूलिकणा भी मधुमयी हो उठती है—मधुवत्पर्थिवं रजः—व्यक्तिगत दुःख वेदना को विश्वजनीन व्यापारों के साथ संयुक्त एव समन्वित करके मानवात्मा का सम्प्रसारण होता है। विश्वकवि इसी भावना से उदार मुक्ति व असीम परितृप्ति की उपलब्धि करता है। ऐसी परिस्थिति में विश्वकवि मानव जीवन को हम लोगों की तरह छिन्न-भिन्न करके नहीं देखता। उसकी दृष्टि अखण्ड एव सर्वात्मक होती है। इसीलिए उसके निकट जीवन का अर्थ गूढ़, गम्भीर एवं महान् होता है।

To me the meanest flower that blows
Can give thoughts that lie deep for tears.

घुलिर घूलि आमि रयेछि घूलि परे,
जेनेछि भाई धोते, जगत् चराचरे।

महाकवि गेटे गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की तरह सिद्ध हस्त साहित्यिक एव विश्व-कवि हैं। जर्मन-साहित्य की ऐसी कोई विचारधारा एवं कर्म प्रणाली अछूती नहीं, जिस पर इस कवि ने अपनी दागबेल न लगाई हो। गेटे ने अपने यौवन काल में चित्रकला को उन्मीलित किया था और गुरुदेव ने वृद्धावस्था में। परन्तु इन दिनों कवियों को चित्रकला से प्रगाढ़ प्रम था। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ की विश्वभारती इसका प्रमाण है कि वे विश्वजननी शिक्षा-दीक्षा एव विश्वजननी शान्ति एवं मैत्री के मन्त्र-गुरु थे। इसी भाव की जाग्रत कामना विश्वकवि गेटे ने भी की थी। अतएव उसने ह्वाइमार रंगमंच की स्थापना की थी। रवीन्द्र नाथ की तरह गेटे ने भी कृषि व्यवस्था की उन्नति के लिए गम्भीर चिन्ता एव चेष्टा की थी। इन दानों कवियों की जितनी ही स्तुति की जाय थोड़ी है। वस्तुतः रवीन्द्र नाथ और गेटे विश्व मानव की दु:ख वेदना, जरामृत्यु के प्रति बड़े सवेदन शील रहे हैं। विश्व के ये दोनों कवि मानो इस जीवन की सारी क्षुद्रता नीचता से ऊपर उठकर शतदल की तरह ज्वलन्त जीवन के सत्य को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध करते हैं। मरण वेला के बालुकामय तट पर बैठ कर इन दोनों विश्व विभूतियों ने अविनश्वर मानवात्मा के जयगीत गाये हैं :—

महाम्बुधि येइ मतो वाणी हीन स्तब्ध धरणीरे
बाँधियाछे चतुर्दिके अन्तहीन नृत्यगीत घिरे
तेमनि आमार छन्द भाषारे घेरिया आलिंगने,
गावे युगयुगान्तरे सरल गम्भीर कलस्वने,
दिक् होते दिगन्तरे महा मानवेर स्तवगान,
क्षणस्थायी मर जन्मे महद् मर्यादा करि दान।

—समाप्त—

मुद्रक—दीपक प्रेस, १७।२७२ नदेसर, बनारस कैन्ट।